।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

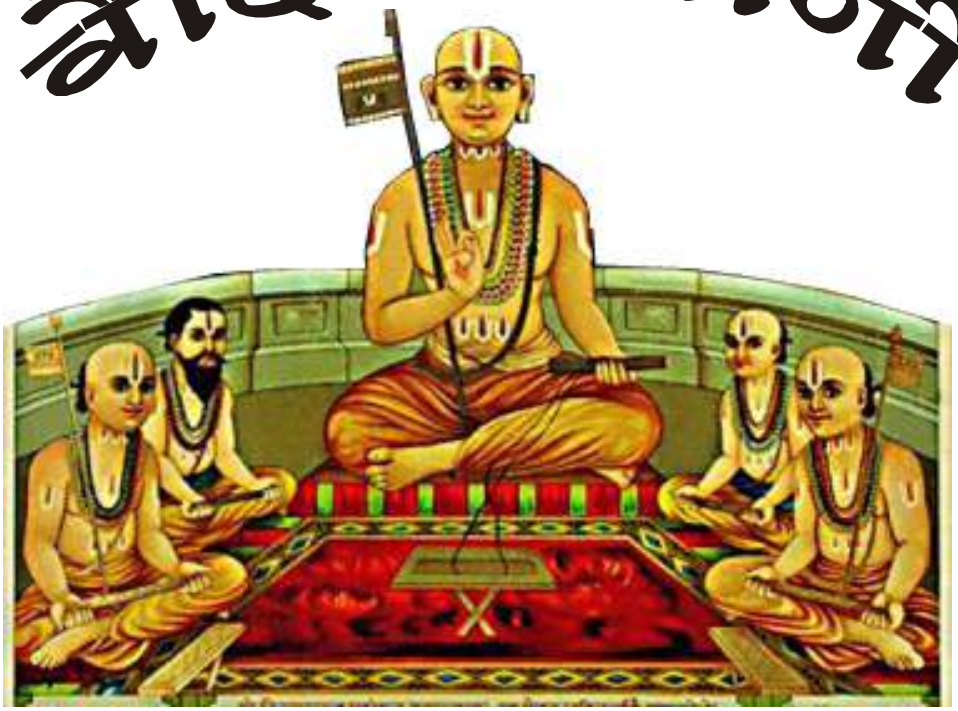

वर्ष- २४ सन्- २०११ ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- ३ रामानुजाब्द त्रैमासिक प्रकाशन

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ।।

अर्थात् देवता और ऋषि मुनि भी जिन्हें निर्मल मन से ढूँढ़ते रहते हैं उन नारायण के चरण कमलों से तीनों लोक के ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर भी जिसका मन एक पल के लिए विचलित नहीं होता वह वैष्णवों में अग्रगण्य है।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	वैदिक-वाणी	३
२.	सरोयोगी, भूतयोगी और महद्योगी	४
३.	आचार्य पद्य	६
४.	श्रीभक्तिसार आलवार	७
५.	श्रीकुलशेखर आलवार	१२
६.	श्रीविष्णुचित्त आलवार	१७
७.	श्रीभक्तांघ्रिरेणु आलवार (श्रीविप्रनारायणजी)	२२
८.	श्रीमुनिवाहन आलवार (श्रीपाणसूरि)	२७
९.	श्रीशठकोपसूरि एवं मधुर कवि आलवार	३०
१०.	श्रीपरकालसूरि आलवार (श्रीनीलम्)	३७
१२.	बारह आलवार के सङ्क्षिप्त परिचय	४०

●

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) ३५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ५०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें
प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

कलो खलु भविष्यन्तिनारायणपरायणाः ।
क्वचित् क्वचित्महाराजद्रविडेषु च भूरिषः ।।
ताम्रपर्णी नदीयत्र कृतमाला पयस्विनी ।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।।
भूतंसरश्चमहदाह्वयभट्टनाथ-
श्रीभक्तिसारकुलशेखर योगिवाहान् ।
भक्ताङ्घ्रिरेणु परकालयतीन्द्रमिश्रान्,
श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणतोऽस्मिनित्यम् ।।

(....२८-४०)

बद्ध जीवों के उद्धार के लिए भगवान् ने तीन बार कृपा की है। प्रथम भगवान् ने पशु, पक्षी आदि शरीरों की अपेक्षा देव-दुर्लभ, विवेक-प्रधान तथा मोक्ष का साधन रूप मानव शरीर दिया। इस उत्तम मानव शरीररूप सम्पत्ति को प्राप्त करके भी जब जीव अपनी क्रूरता एवं स्वेच्छाचारिता आदि दोषों को नहीं छोड़ा तब भगवान् व्यास, मनु आदि के रूप में भूतल पर आकर ज्ञान का प्रकाश देने के लिए शास्त्रों की रचना की। उससे भी जब मानव की क्रूरता बन्द नहीं हुई तब भगवान् श्रीराम, कृष्ण आदि के रूप में अवतरित हुए। उससे भी मानव को विशेष लाभ नहीं हुआ; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि माया मोहित अज्ञानी मनुष्य मेरे ईश्वरीय भाव को और लोकोपकार के रहस्य को नहीं समझ सका। वे नहीं जानते हैं कि मैं भगवद्-विमुख जीवों को अपनी भक्ति में लगाने के लिए अवतार लिया हूँ। तदनन्तर भगवान् नारायण ने उस काम के लिए श्रीलक्ष्मीजी को अवतरित होने की सम्मति दी। श्रीलक्ष्मीजी दिव्य सूरियों को भूतल पर भेजकर स्वयं भी अवतरित हुई।

श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध में कहा है कि द्रविड़ देश में ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी, महानदी और प्रतीची नदियों के जल पीने वाले प्रायः भगवान् वासुदेव के भक्त होते हैं—इसके अनुसार उन्हीं क्षेत्रों में भगवत्प्रेरणा से जनमानस में भगवद्भक्ति की धारा प्रवाहित करने के लिए भगवान् के दशावतार के समान दस नित्य सूरियों के इस भूतल पर अवतार हुए हैं। उनके नाम ये हैं—सरोयोगी, भूतयोगी, महद्योगी, श्रीभक्ति-सारसूरि, श्रीकुलशेखरसूरि, श्रीशठकोपसूरि, श्रीविष्णु-चित्सूरि, श्रीभक्ताङ्घ्रिरेणुसूरि, श्रीमुनिवाहनसूरि और श्रीपरकालसूरि। श्रीगोदाम्बा जी और श्रीमधुर कवि को मिलाकर बारह आलवार होते हैं। भगवत्प्रेम रस में सतत बिभोर रहने वाले सन्त आलवार कहे जाते हैं। आलवार द्रविड़ भाषा का शब्द है। दिव्य ज्ञान सम्पन्न महापुरुष सूरि होते हैं और जिनका मन सतत भगवान् के चरण कमलों का रस-पान करता रहता है वे योगी कहे गये हैं। इस लोक तथा स्वर्ग के सुखों से पूर्ण विरक्त और भगवान् के चरण कमलों में सदा अनुरक्त रहने वाले ही वास्तविक सन्त हैं। सच्चे सन्त ज्ञान और भक्ति के सजीव मूर्ति होते हैं उन्हें अहङ्कार, राग-द्वेष आदि विकार स्पर्श नहीं कर पाते। वैसे सन्त परम भागवत एवम् उत्तम वैष्णव माने गए हैं। नौ योगेश्वरों में हरिनाम का योगेश्वर ने जनक के पूर्वज राजा 'निमि' से कहा है कि अखिल सौन्दर्य एवं माधुर्यनिधि भगवान् के चरण-कमलों से आधे पल के लिए भी जिसका मन अलग नहीं होता तथा तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी जिसे भगवान् नारायण विस्मृत नहीं होते वे ही परम भागवत सन्त हैं।

दक्षिण भारत के आलवार सन्तों में ये सब लक्षण पूर्णतः समन्वित थे। परम भागवत आलवार सन्तों का प्रभाव महान् है। उनके चरित्र पढ़ने या सुनने से मनुष्य में अविरल भक्ति होती है। उत्तर भारत के श्रीवैष्णवगण आलवार सन्तों के चरित्र से अवगत होकर भगवान् के चरणों में निर्मल प्रेम करें। एतदर्थ एक बार वैदिक-वाणी पत्रिका पुनः आलवार चरिताङ्क के रूप में प्रस्तुत की जा रही है।

—०००—

सरोयोगी, भूतयोगी और महद्‌योगी

तुलायां श्रवणे जातं कांच्यां काञ्चनवारिजात् ।
द्वापरे पाञ्चजन्यांशं सरोयोगिनमाश्रये ।।
तुलाधनिष्ठासम्भूतं भूतं कल्लोलमालिनः ।
तीरे फुल्लोत्पने मल्यां पूर्य्यामीडे गदांशकम् ।।
तुलाशतभिषाजातं मैयूरपुरकैरवात् ।
महान्तं महदाख्यातं वंदे श्रीनन्दकांशकम् ।।

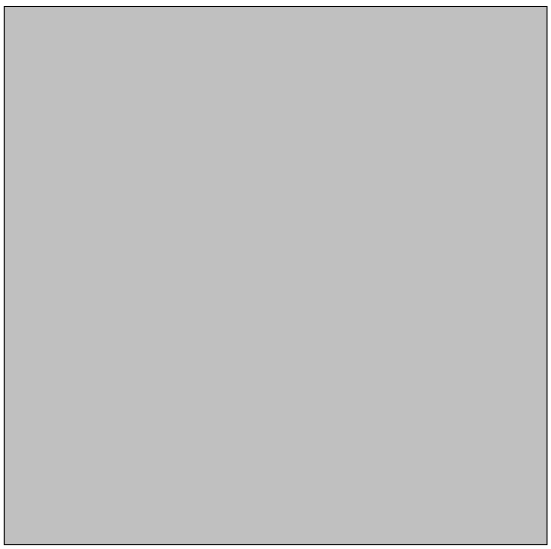

संसार में अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, काँची, उज्जैन और द्वारिका–ये सात मोक्षदायिनी पुरियाँ प्रसिद्ध हैं। उनमें सबसे श्रेष्ठ एवं सुप्रसिद्ध महापुरी काँची है, जहाँ पर ब्रह्मा ने अश्वमेध यज्ञ के द्वारा भगवान् श्रीवरदराज की अराधना की थी। 'क' शब्द ब्रह्मा का वाचक है। उनके द्वारा जहाँ पर भगवान् अर्चित हुए हैं वह काँची नाम से प्रसिद्ध है। काँची में भगवान् के अठारह दिव्य देश हैं, उनमें एक स्थान पर अष्टभुजी भगवान् हैं। उनके मन्दिर से उत्तर में एक सरोवर है। जिसमें स्वर्णवर्ण के समान कमल खिले हुए हैं। उसी कमल से द्वापर के अन्त में आश्विन शुक्लपक्ष अष्टमी मङ्गलवार को श्रवणा नक्षत्र में भगवान् के पाञ्चजन्य के अंश से श्रीसरोयोगी का अवतार हुआ है। वे कासारयोगी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

सरोयोगी के अवतार के द्वितीय दिन महावलीपुर में समुद्र के तट पर माधवी लता के पुष्प से धनिष्ठा नक्षत्र में भूतयोगी का अवतार हुआ है। ये भगवान् के गदा के अंश से अवतरित हुए हैं।

श्रीभूतयोगी के अवतार के द्वितीय दिन समुद्र के तटवर्ती मयूरपुर (मैलापुर) ग्राम में आदि केशव भगवान् के मन्दिर के पास एक कूप के अन्दर लाल कमल पुष्प से महद्‌योगी का अवतार हुआ है। ये भगवान् के नन्दक खड्‌ग के अंश से अवतीर्ण हुए हैं। सरोयोगी, भूतयोगी और महद्‌योगी–ये तीनों का अवतार पुष्प से होने के कारण वे 'अयोनिज' हैं। जैसे पूर्व वासना वश कोई भी बालक जन्म के बाद माँ का स्तन से दूध पीने लगता है वैसे ही पुष्प से उत्पन्न ये तीनों योगी अभ्यास वश भगवच्चरणार-

विन्द के प्रेम रस-पान करने में प्रवृत्त हो गये थे। इनके मुख्य आहार में भगवान् के चरणारविन्द का प्रेम रस ही था।

सरोयोगी, भूतयोगी और महद्योगी–ये तीनों आलवार सन्त भगवद् भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की मूर्ति थे। इन्हें बचपन से ही भगवान् के चरण-कमल को छोड़कर अन्य सांसारिक विषयों में अभिरुचि नहीं रहती थी। ये तीनों एक-दूसरे से अपरिचित के रूप में भगवद्भक्ति प्रचार के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में घूमते रहते थे। भगवान् नारायण की कृपा से वे पूर्ण ज्ञान सम्पन्न तथा सभी तात्त्विक अर्थों से पूर्ण परिचित होकर जन मानस में भक्ति की धारा प्रवाहित करते हुए भूमण्डल में भ्रमण करते रहते थे।

एक समय विशेष वर्षा हो रही थी। सूर्य को अस्ताचल चले जाने के कारण रात्रि हो गयी थी। सरोयोगी घूमते हुए एक गाँव में प्रवेश कर गये। एक ब्राह्मण के द्वार पर उपस्थित होकर अपने को वर्षा से सुरक्षित रखने के लिए एक छोटी-सी कोठरी में ठहर गए। वह कोठरी अत्यन्त छोटी थी उसमें एक ही व्यक्ति किसी प्रकार से सो सकता था। अन्धेरी रात्रि थी। कुछ ही क्षण बाद श्रीभूतयोगी भ्रमण करते हुए वहाँ आ गये और उन्होंने भी विश्राम की इच्छा व्यक्त की। परम दयालु श्री सरोयोगी ने श्रीभूतयोगी को अपने विश्राम स्थान का आधा भाग सहर्ष दे दिया। उसमें दो व्यक्ति बैठकर समय बीता सकते थे। इसलिए दोनों बैठकर भगवत् चिन्तन करने लगे। इसी बीच महद्योगी भी भ्रमण करते हुए वहाँ आकर विश्राम के लिए स्थान की याचना की। उनकी बात सुनकर श्रीसरोयोगी और श्रीभूतयोगी ने उसी छोटी-सी कोठरी में उन्हें भी प्रवेश करा दिया और तीनों खड़े होकर भगवान् के चिन्तन करने लगे; क्योंकि तीनों को सोने एवं बैठने भर जगह नहीं थी। उसमें खड़े ही रह सकते थे। राग-द्वेष रहित और परम दयालु होने के कारण खड़े अवस्था में भी भगवद् चिन्तन में तीनों आनन्द अनुभव कर रहे थे। कोठरी का किवाड़ बन्द कर दिया गया था। उन योगियों के बीच मूसलाधार वर्षा के भयानक अर्धरात्रि में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान् नारायण प्रवेश कर गये। जगह सङ्कुचित होने के कारण योगियों को परस्पर शरीर स्पर्श होने से कष्ट अनुभव होने लगा। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि कोठरी का द्वार अच्छी तरह से बन्द है और हम आपस में इस अन्धकार मय स्थान में एक-दूसरे को देख नहीं सकते हैं फिर यह इतनी भीड़ कैसे हो गयी। पहले हम यहाँ तीन व्यक्ति थे अब यह चौथा कब और कैसे आ गया। परस्पर में विचार करने पर भी चौथे व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी नहीं मिली। तब योगियों ने ध्यान करके ज्ञान नेत्रों से देखा तो उन्हें ज्ञात हो गया कि साक्षात् नारायण ही कृपाकर हमलोग के बीच उपस्थित हो गए हैं। कुटिया में महान् प्रकाश छा गया। भगवान् का दर्शन कर तीनों आनन्द विभोर हो गए। उन्हें शरीर की भी सुध-बुध नहीं रही। परम दयालु नारायण ने उनसे कहा कि वर माँगो। तीनों उनके चरणों में गिर पड़े और भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभो! आपका गुणगान कभी भी नहीं छुटे यही वरदान हम माँगते हैं। भगवान् ने उत्तर दिया कि तुम लोगों

ने मुझे अपने प्रेम पाश में बाँध लिया है। अत: तुम्हारे हृदय को छोड़कर मैं कहाँ जा सकता हूँ। अब तुम लोग जीवों के उद्धार के लिए उन्हें मेरी भक्ति की शिक्षा दो। इस लोक का काम पूरा करके वैकुण्ठ चले आना। तीनों योगियों ने भगवान् के प्रति आनन्दातिशय के कारण दिव्य प्रबन्ध का सौ-सौ गाथाओं में नारायण की महिमा का गान किया। जो ज्ञान प्रदीप कहे जाते हैं।

श्रीसरोयोगी ने अपने दिव्य प्रबन्ध में चार दिव्य देशों का वर्णन किया है। श्रीरङ्गम्, वेङ्कटाद्रि, श्रीकाञ्ची और देहली (द्रविड़ (तमिल) भाषा में देहली को कोइल्लूर कहा जाता है। यह उस स्थान को कहा जाता है जहाँ तीनों आलवारों का परस्पर मिलन हुआ था)। श्रीभूतयोगी ने श्रीरङ्गम्, काँची, देहलीनगर और अपने अवतार स्थल महाबलीपुरम् का वर्णन किया है। श्रीमहद्योगी के दिव्य प्रबन्ध में श्रीरङ्गम्, वेङ्कटादि, देहलीपुरम् और मयूरनगरी की उत्तर दिशा में पवित्र पुष्करिणी के तट पर विराजमान भगवान् की महिमा वर्णित है। इन तीनों योगियों ने तीन सौ गाथाओं में भगवद् महिमा को लिखकर भक्ति की रक्षा की है। जगत् में भक्ति का प्रचार-प्रसार तथा उसकी रक्षा का काम किया है।

उन तीनों योगियों ने सौ-सौ गाथाओं में जिन दिव्य प्रबन्धों की रचना की है उसका सारांश इस प्रकार है। भगवान् नारायण जड़-चेतन वस्तुओं से विलक्षण हैं, उनके समान कोई दूसरी वस्तु नहीं है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, दिशाएँ, नक्षत्र और ग्रह–ये सब नारायण के शरीर हैं। अत: उन्हीं के चरणों की शरणागत होने में मानव जीवन की सफलता है। वे एक ही तत्त्व हैं; परन्तु सौशील्य, वात्सल्य, सौलभ्य आदि दिव्य गुणों के कारण अनेक रूप धारण किए हुए हैं। उनका नाम उच्चारण करें। मानव धन से सुखी नहीं हो सकता। भगवत्कृपा ही सबों की रक्षा कर सकती है। वे ही ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता हैं। भटकते हुए मन और इन्द्रियों को अपने वश में करे। एक मात्र नारायण की प्राप्ति की इच्छा करे और अनन्य भाव से उन्हीं की उपासना करे। वे भक्तों के लिए सदा मूर्ति रूप में उपस्थित हैं। जिस प्रकार लता किसी वृक्ष का आश्रय ढूँढ़ती है, उसी प्रकार मेरा मन भी भगवान् के चरणों का आश्रय ढूँढ़ता है। भगवान् के चरणों में जितना सुख है उतना संसार के अनित्य विषयों में नहीं। हे प्रभो! अब ऐसी कृपा कीजिए की मेरी वाणी केवल आपका गुणगान करे। मेरे हाथ आपके चरणों की सेवा करे। मेरे नेत्र आपके दिव्य स्वरूप का दर्शन करे। और कान आपके गुणों का श्रवण करे। मेरा मन आपके स्वरूप के चिन्तन में लगा रहे तथा आप मेरे हृदय में सदा वास करें।

—oooo—

आचार्य-पद्य

वेङ्कटगिरिपर भगवान जी, आये अधम उधारन।
भू योगीश्वर महत भट्टवर, भक्तिसार अगवान जी। आये०
कुलशेखर श्रीयोगीवाहन, भक्त चरण रजमान जी। आये०
जामातृ परकाल वीरवर, जिनसे लुटाये भगवान जी। आये०
भाष्यकार यामुनमुनियोगी, राममिश्र परधान जी। आये०
स्वामी पुण्डरीक लोचन वर, कृपा किये जन जान जी। आये०
नाथ मुनिहुँ, शठकोपमुनीश्वर, विश्वक्सेन परधान जी। आये०
माता श्रीलक्ष्मीमहारानी, दया करी जन जान जी। आये०
दीनहिं के हित भूतल आये, जानत परम सुजान जी। आये०

श्रीभक्तिसार-आलवार

मघायां मकरे मासे चक्रांशंभागवोद्भवम् ।
महीसारपुराधीशं भक्तिासारमहं भजे ।।

एक समय अत्रि, वशिष्ठ, भृगु, भार्गव एवम् अङ्गिरा आदि ऋषियों ने तप के लिए ब्रह्मा से एक उत्तम स्थान की माँग की। ब्रह्मा ने ऋषियों को दक्षिण भारत के महीसार क्षेत्र में तप के लिए

आदेश दिया। महीसार को ही तिरुमौली कहते हैं। भार्गवऋषि भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के उद्देश्य से महान् तप कर रहे थे। देवताओं ने कनकांगी नाम की एक अति सुन्दरी युवती नारी को भार्गवऋषि के पास भेजा। भार्गवऋषि ने उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। उससे बिभव संवत्सर, पौष मास, कृष्णदशमी, गुरुवार, मघा नक्षत्र के दिन तुला लग्न में भगवान् नारायण के सुदर्शन चक्र के अंश से एक बालक जन्म लिया जो जगत् में श्रीभक्तिसार नाम से प्रसिद्ध हुआ। कनकांगी बालक को वेंत वन में रखकर दूसरी जगह चली गयी। भगवान् उसे अपने दिव्यस्वरूप का दर्शन देकर अन्तर्धान हो गए। भगवान् के वियोग में बालक रोने लगा। उसी समय वेंत का पात्र बनाकर बेचने वाला वेंत काटने के लिए आया। वह उस निर्जन वन में सूर्य के समान परम तेजस्वी शिशु को रोता हुआ देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ। उसे सन्तान नहीं थी। अत: प्रसन्नतापूर्वक उसे अपनी गोद में उठाकर घर ले आया और अपनी पत्नी पंकजवल्ली को सौंप दिया। सन्तानहीन वेंतकार पत्नी सहित इस परम तेजस्वी शिशु को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। जिस प्रकार श्रीवसुदेवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को गोकुल में नन्दजी के घर पहुँचा दिया था, उसी प्रकार वेंतकार ने नवजात शिशु को वन से अपने घर ले गया। पुन: पति-पत्नी उस शिशु को पुत्रवत् पालन करने लगा। पंकजवल्ली को स्नेहवश स्तन से दूध निकलने लगा; परन्तु बालक किसी मानवी का दूध पीना पसन्द नहीं किया। भगवान् की कृपा से वह बालक परमानन्द रस का पान करता हुआ प्रतिदिन बढ़ने लगा। वह सामान्य बालकों की तरह आहार ग्रहण, मल-मूत्रत्याग आदि कर्म से वञ्चित रहकर भगवत्प्रेम में मग्न रहता था। अत एव वह बालक भक्तिसार नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महीसारपुर में पुत्रहीन एक वृद्ध शूद्र था। उसने जब इस अद्भुत बालक भक्तिसार का समाचार सुना तो गाय का गरम दूध लेकर अपनी पत्नी के साथ वेंतकार के घर श्रीभक्तिसार जी के पास पहुँचा और उनका दर्शन करके दूध पीने के लिए विशेष आग्रह किया। श्रीभक्तिसारजी उसके हार्दिक प्रेम मिश्रित आग्रह को मानकर दूध पी लिये। वृद्ध शूद्र प्रतिदिन दूध श्रीभक्तिसार जी को पिलाने लगा। उसे पुत्र की वासना थी। वृद्ध दम्पति के भाव को

समझकर श्रीभक्तिसारजी ने उनसे कहा कि आप दोनों मेरे पीने के बाद बचे हुए दूध को प्रेम पूर्वक पी जाएँ, ऐसा करने से निश्चय ही आपको सन्तान होगी। श्रीभक्तिसार के उच्छिष्ट दूध पीने से दोनों को युवावस्था प्राप्त हो गयी। तदनन्तर पत्नी गर्भवती हुई और समयानुसार उसे सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ। श्रीभक्तिसार की कृपा से उत्तम पुत्र प्राप्त कर शूद्र आनन्द मग्न हो गया, उसने अपने बालक का नाम 'कणिकृष्ण' रखा। बालक कणिकृष्ण भक्तिसार मुनि की कृपा से पूर्ण विद्वान् एवं भगवद् भक्त कवि बन गया। वह श्रीभक्तिसार की सेवा में समर्पित हो गया। श्रीभक्तिसार सात वर्ष तक वेंतकार के घर रहे; परन्तु उस अवधि में वेंतकार का अन्न-जल ग्रहण नहीं किए। वे सहसा वहाँ से तीर्थ भ्रमण के लिए निकल गए। वे सभी शास्त्रों के सारतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर अष्टाङ्गयोग की ओर प्रवृत्त हुए। उन्होंने भगवान् नारायण को अपने ध्यान का विषय बनाया। जैसे जगत् में गुरु-शिष्य की परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण भी भूतल पर आचार्य के शरणागत होकर विशेष शिक्षित एवं दीक्षित हुए वैसे ही श्रीभक्तिसार स्वामी ने श्रीमहायोगी से वैष्णवी दीक्षा लेकर नारायण स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया। श्रीभक्तिसारजी ने कहा है कि त्रिपादविभूति और लीलाविभूति इन दोनों के स्वामी भगवान् विष्णु ही हैं। उन्हीं के नाभि कमल से ब्रह्मा का अविर्भाव हुआ है और ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में शङ्कर जी उत्पन्न हुए हैं। इस रहस्य को प्रकट करने के लिए श्रीभक्तिसार स्वामी ने द्रविड़ भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की है—

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ।।

अर्थात् सब शास्त्रों को ढूँढ़ने तथा उन पर बार-बार विचार करने पर यही निष्कर्ष निकला है कि जीवों के उद्धार के लिए सदा एक मात्र सर्वेश्वर, सबकी आत्मा श्रीमन्नारायण का ध्यान करना चाहिए। ब्रह्मतत्त्व का निर्णायक वेदान्त शास्त्र का भी यही अभिमत है।

श्रीभक्तिसारसूरि के प्रभाव से श्रीशङ्करजी का परायज

भगवद्भक्ति परायण श्रीभक्तिसारसूरि का अपरिमित प्रभाव को जानकर पार्वती के साथ श्रीशङ्कर जी उनके पास आये। उस समय श्रीभक्तिसार स्वामी कंथा सी रहे थे। श्रीशङ्करजी ने श्रीभक्तिसारसूरि से कहा कि मैं आपको अभिष्ट वरदान देने आया हूँ। जो इच्छा है माँग लें। शङ्करजी के वचन पर ध्यान न देकर श्रीभक्तिसारजी कंथा सीने में लगे रहे। उन्हें उदासीन देखकर श्रीशङ्करजी बोले कि मुझे आये हुए जानकर भी आप उदासीन क्यों है? श्रीभक्तिसारजी ने उत्तर दिया कि मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। पुनः श्रीशङ्करजी ने श्रीभक्तिसारजी से कहा—मैं आपको वरदान देने आया हूँ। दुर्लभ वस्तु को भी सुलभ बना सकता हूँ। श्रीभक्तिसारजी ने शङ्करजी से कहा कि आप यही वरदान दें कि सीने वाला सूत (डोरा) सूई में बिना रुकावट के प्रवेश कर जाय। उपहास युक्त श्रीभक्तिसारजी के वचन से श्रीशङ्करजी को विशेष क्रोध हुआ और उन्होंने श्रीभक्तिसारजी को जलाने के लिए तृतीय नेत्र खोलकर प्रलयकारी दाह उत्पन्न कर दिया। उससे सब प्राणी बेचैन हो गए। तब श्रीभक्तिसार स्वामी ने अपने दाहिने पैर के अङ्गुठे से तीनों लोक को भी भस्म कर देने वाले दाह को उत्पन्न किया। वह दाह शङ्करजी के नेत्र से उत्पन्न दाह से करोड़ों गुणा अधिक था। श्रीभक्तिसारजी के द्वारा उत्पन्न दाह से पार्वती सहित शङ्करजी व्याकुल होने लगे। उससे बचने के लिए श्रीशङ्करजी ने प्रलयाग्नि को शान्त करने वाले मेघों को उत्पन्न किया। उससे मुसलाधार वर्षा होने लगी। तब पार्वती सहित रुद्र का कष्ट दूर हो गया। दाह के समय श्रीभक्तिसार

जी अपनी बाह्य-वृत्तियों को रोककर भगवान् के दिव्य-चरणों का अनुभव करते हुए मौन बैठे थे। अत एव उन्हें उत्पन्न दाह से किसी प्रकार का कष्ट अनुभव नहीं हुआ। श्रीभक्तिसार स्वामी के प्रभाव को देखकर श्रीरुद्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीभक्तिसार नाम को सार्थक समझा और उनकी बार-बार प्रशंसा करते हुए पार्वती से कहा कि भगवद्भक्तों का प्रभाव अवर्णनीय है। पुनः शङ्करजी ने कहा कि आज मैं उसी तरह भक्तिसार से पराजित हो गया जैसे अम्बरीष से दुर्वासा पराजित हुए थे।

श्रीभक्तिसार सूरि का द्वितीय प्रभाव—

एक सिद्धों का स्वामी था। जिसका नाम शुक्तिहार था। एक बार वह देवों से पूजित होकर योगप्रभाव से बाघ पर चढ़कर आकाश मार्ग से विचरण कर रहा था। सहसा श्रीभक्तिसारयोगी के अमित तेज और योग प्रभाव के कारण शुक्तिहार का बाघ आकाश में आगे बढ़ने में असमर्थ हो गया। शुक्तिहार अपने वाहन बाघ को रुकने का कारण सर्वत्र पता लगाते हुए श्रीभक्तिसार योगी के पास आया और उनको प्रणाम करके कहा कि आप कन्था (गुदड़) क्यों धारण किए हुए हैं, इसे परित्याग कर दीजिए। मैं दिव्यवस्त्र निर्मित एक कवच (आसन) प्रदान करता हूँ। उसने श्रीभक्तिसारजी को दिव्यवस्त्र निर्मित एक आसन प्रदान किया। श्रीभक्तिसारजी ने उसे नहीं लिया और माणिक्य आदि से सूर्य की कान्ति के समान उसको चमकदार बनाकर शुक्तिहार को आश्चर्य में डाल दिया। दिव्य अलौकिक तेजोमय दिव्यवस्त्र निर्मित आसन को देखकर शुक्तिहार लज्जित हो गया और उसने अपने गले की मणिमाला उतार कर श्रीभक्तिसार को समर्पित कर कहा कि आप इसको धारण करने की कृपा करें। श्रीभक्तिसारजी ने उस माला को अस्वीकार करते हुए अपने कण्ठ में सुशोभित तुलसी और कमलाक्ष की माला को हाथ में लेकर अमूल्य मणिमाला बनाकर शुक्तिहार को दिखाया। शुक्तिहार अमूल्य मणिमाला को देखकर आश्चर्य मग्न हो गया और श्रीभक्तिसारस्वामी से कहा कि मैं आप पर विजय पाने में असमर्थ हूँ। वह श्रीभक्तिसारजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ अपने लोक को चला गया।

श्रीभक्तिसारसूरि का तृतीय प्रभाव—

श्रीभक्तिसारयोगी के अपूर्व प्रभाव को सुनकर एक आयुर्वेदीय रसशास्त्र के महान विद्वान् जिनका नाम श्रीकोङ्कण सिद्ध था। उसने श्रीभक्तिसार स्वामी के पास आकर एक सिद्ध गुटिका समर्पित की। श्रीभिक्तिसारजी ने उसका प्रभाव पूछा। श्रीकोङ्कण सिद्ध ने कहा कि यह गुटिका महान् सिद्धि प्रदान करती है। जगत् में ऐसी गुटिका दुर्लभ है। इस गुटिका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके स्पर्श मात्र से लोहा सोना बन जाता है।

श्रीभक्तिसारजी ने अपने शरीर से मैल निकाल-कर एक गोली बना ली और उसे कोङ्कण सिद्ध को देते हुए कहा कि इस गुटिका के स्पर्श से पत्थर भी सोना बन जाता है। कोङ्कण सिद्ध ने परीक्षणार्थ उस गुटिका को पर्वत पर फेंक दिया। उस गुटिका के स्पर्श मात्र से समस्त पर्वत सोने का बन गया और सुमेरु पर्वत के समान चमकने लगा। इस सुवर्ण-गिरि को देखकर कोङ्कण सिद्ध अन्यन्त विस्मित हुआ और अपनी सिद्धि का अभिमान त्याग कर श्रीभक्तिसार को प्रणाम करके चला गया।

एक समय महायोगेश्वर श्रीभक्तिसार स्वामी अपने अवतार स्थल महीसार में उपस्थित थे। वे सदा ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण करके भगवत्पूजन करते थे। श्वेतमिट्टी का तिलक लगाया जाता है। एक दिन श्वेतमिट्टी का अभाव हो गया। श्रीस्वामीजी बहुत चिन्तित हुए; क्योंकि विना तिलक लगाये भगवान् का पूजन नहीं करना चाहिए। उससे भगवान् को अप्रसन्नता होती है। उस समय श्रीभक्ति-

सारसूरि को परम दयालु भगवान् श्रीवेङ्कटेशजी ने दर्शन देकर कहा कि योगिन्! आप काँचीपुरी में सरोयोगी अलवार के जन्म-स्थल की मिट्टी से ऊर्ध्वपुण्ड्र-तिलक धारण करें। भगवान् श्रीवेङ्कटेशजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर योगिराज काँची चले गए। वहाँ से तिलक के लिए मिट्टी लेकर दिव्यदेशों का भ्रमण करते हुए श्रीभक्तिसारजी पुनः सरोयोगी सरोवर के तट पर ही आ गए। वहाँ भगवान् श्रीमन्नानायण का ध्यान करते हुए सात सौ वर्षों तक निवास किये।

श्रीभक्तिसारसूरि का चतुर्थ प्रभाव—

दक्षिण भारत में कुम्भकोणम् नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। योगेश्वर श्रीभक्तिसारजी ने उसी कुम्भकोणम् के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में व्याघ्रपुर नाम का एक गाँव था। वहाँ एक ब्राह्मण के घर सूरि जी ठहर गए। वहाँ के ब्राह्मण इनके प्रभाव को नहीं जानते थे। उन लोगों ने उनका बाह्यस्वरूप देखकर ब्राह्मणेतर समझा। अत एव उन ब्राह्मणों ने श्रीभक्तिसारसूरि से अलग हटकर सन्ध्या-वन्दनादि कृत्य सम्पन्न किया। श्रीभक्तिसारजी समझ गए कि ये ब्राह्मण मुझे हेय दृष्टि से देख रहे हैं। अतः महायोगेश्वर श्रीभक्तिसार वहाँ से उठकर चले गए।

उन्हें जाने के पश्चात् व्याघ्रपुर के ग्रामीण ब्राह्मणों के याद किए हुए समस्त वैदिक मन्त्र विस्मृत हो गए। ब्राह्मण विचार करने लगे कि याद किए हुए मन्त्र हम कैसे भूल गए? तब वे सब यह निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो महात्मा यहाँ आकर बैठे थे उन्हें हमलोग से अपमान मिला। फलतः उनके प्रकोप से हमलोग के वैदिक मन्त्र विस्मृत हो गए हैं। तदनन्तर उनलोगों ने श्रीभक्तिसारसूरि के पास जाकर क्षमा माँगी। परम दयालु महायोगेश्वर श्रीभक्तिसार ने दयावश अपराधी ब्राह्मणों के अपराध को क्षमा कर दिया। जिससे उनलोगों के विस्मृत वैदिक मन्त्र स्मरण पथ पर आ गए। इसीलिए शास्त्र का निर्देश है कि किसी भी भगवद्भक्त को हेय दृष्टि से न देखें। ब्राह्मणादि सभी वर्णों के अन्दर वही शूद्र है जो भगवान् का भक्त नहीं है—

न शूद्राभगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः।

पुनः मार्ग में श्रीभक्तिसारजी ने भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा जिसके आगे एक यज्ञ हो रहा था। उसमें कुछ लोगों ने श्रीभक्तिसार के प्रभाव को समझकर उनकी पूजा की। वहाँ उपस्थित कुछ ऋत्विजों ने रुष्ट होकर कहा कि यह अच्छा नहीं हुआ कि यज्ञ में श्रीभक्तिसारजी की पूजा हुई। वे लोग श्रीभक्तिसार और उनकी पूजा करने वालों की निन्दा करने लगे। जिन लोगों ने उनकी पूजा की थी उन्हें निन्दा सुनकर कष्ट हुआ। वे लोग योगीराज श्रीभक्ति-सार से निवेदन किए कि आप अपने योग का प्रभाव दिखलाकर निन्दा करने वालों का मुख बन्द करें। श्रीभक्तिसार स्वामी ने उनकी प्रार्थना सुनकर अपने हृदय-कमल में स्थित शेषशायी, शङ्खचक्र आयुधों से विभूषित भगवान् नारायण का ध्यान करते हुए लोकानुग्रह के लिए उनसे प्रार्थना की कि हे भगवन्! यहाँ उपस्थित सभी लोगों को आप प्रत्यक्ष होकर दर्शन दीजिए। योगीराज के द्वारा प्रार्थित भगवान् उनके शिर के मध्य भाग में प्रकट हो गए। सभी लोगों ने देखा कि शेषशय्या पर सोए शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी, नीलमेघके समान श्यामवर्ण वाले पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु श्रीयोगीराज के मस्तक पर विराजमान हैं। भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन कर सबों ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और श्रीभक्तिसार के अपूर्व प्रभाव को देखकर सब डर गए। जो निन्दक थे वे सब योगीराज भक्तिसार के चरणों में गिरकर अपने अपराध की क्षमा-याचना किए। योगीजी ने अपने हृदय-कमल में भगवान् श्रीमन्नारायण का ध्यान करते हुए जगत् में भगवद्भक्ति का विशेष प्रचार-प्रसार किया। वे आजीवन अन्नादि

आहार का परित्याग कर दुग्धाहार ही ग्रहण करते थे। उन्होंने कुम्भकोणम् में भगवान् शार्ङ्गपाणि के दर्शन तथा उनके अनुपम सौन्दर्य के अनुभव से उत्पन्न प्रेमाधिक्य के कारण दो दिव्य प्रबन्धों की रचना की। जिसमें २२६ गाथाएँ हैं। प्रथम प्रबन्ध 'चतुर्मुखादि' नाम से प्रसिद्ध है जिसमें ९६ गाथाएँ हैं। दूसरा प्रबन्ध 'चन्द्रवृत्त' के नाम से बिख्यात है, जिसमें १२० गाथाएँ गाई गई हैं, जो द्रविड, भाषा में भगवान् के दिव्य गुणों की महानिधि है।

उन दिव्य प्रबन्धों का सारांश निम्नलिखित हैं—

मुक्ति भगवान् की कृपा से ही प्राप्त होती है। भगवान् की कृपा को प्राप्त कर मनुष्य अजेय हो जाता है। भगवत्प्रेम ही मनुष्य के लिए सबसे बड़ी सम्पत्ति है। भगवान् ही वेदों के सार हैं। पूजा और स्तुति के योग्य एक मात्र भगवान् नारायण ही हैं। वे ही संसार के आदि कारण हैं। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान–तीनों वे ही हैं। नारायण ही सब कुछ हैं। नारायण ही हमारे सर्वस्व हैं।

विद्वानों ने प्रमाण के साथ निर्णय किया है कि महायोगेश्वर श्रीभक्तिसारजी ने सात हजार वर्ष तक भूतल पर रहकर दिव्य देशों में वास करते हुए भक्ति का प्रचार-प्रसार किया है। अन्त में वे श्रीमन्नारायण का स्मरण करते हुए दिव्य धाम वैकुण्ठ में चले गए।

—०००—

विशेष-सूचना

प्रिय श्रीवैष्णववृन्द!

परब्रह्म श्रीमन्नारायण की असीम अनुकम्पा से प्राप्त मानव शरीर का परम कर्त्तव्य आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करना है, इस भाव का समर्थन सभी सद्ग्रन्थों ने किया है। उन्हीं सद्ग्रन्थों के सार तत्त्व को पूज्यपाद अनन्तश्री विभूषित स्वामी जी महाराज द्वारा प्राप्त कर विगत चौबीस वर्षों से वैदिक-वाणी अविच्छिन्न रूप से आपकी सेवा में संलग्न है। यह बात हम लोगों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। हमारा ध्येय है कि वैदिक-वाणी आप द्वारा निर्दिष्ट पते पर यथा समय उपलब्ध हो जाय। अस्तु आप सभी पाठकों से निवेदन है कि अपना पता एक बार पुनः ग्राहक संख्या के साथ सुस्पष्ट अक्षरों में प्रेषित करने का कष्ट करेंगे, जिससे की नूतन सूची तैयार करने में सौविध्य प्राप्त हो।

कुछ वर्षों से बाजार में महँगाई का जो रौद्ररूप सामने आया है, उससे आप परिचित हैं। अतः विवश होकर हमें सदस्यता शुल्क में वृद्धि करनी पड़ रही है। हमारी विवशता को आप सहजतापूर्वक स्वीकार करेंगे ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। कुछ पाठकों का शुल्क प्राप्त नहीं हो रहा है, या नहीं हुआ है, उनसे विनम्र निवेदन है कि अपना शुल्क यथाशीघ्र उपलब्ध कराने का कष्ट करेंगे। भगवान आप को सदैव निर्मल मति दें इसी शुभकामना के साथ...

व्यवस्थापक
वैदिक-वाणी

श्रीकुलशेखर-आलवार

कुम्भे पुनर्वसौ जातं केरले चोलपट्टने ।
कौस्तुभांशं धराधीशं कुलशेखरमाश्रये ।।

श्रीसरोयोगी, भूतयोगी, महायोगी और भक्ति-सारयोगी–इन चार प्रमुख योगियों के पावन तथा कल्याणकारी चरित्रों का वर्णन किया गया। अब श्रीकुलशेखर-आलवार के दिव्य चरित्र का चित्रण किया जा रहा है।

केरल प्रदेश में केलिपट्टन नाम से प्रसिद्ध एक नगरी थी। वहाँ दृढ़व्रत नाम के भगवद्भक्त धर्मात्मा क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। उन्हें सन्तान प्राप्ति की कामना हुई। जैसे त्रेता में राजा दशरथ ने पुत्र के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया था, वैसे ही राजा दृढ़व्रत ने पुत्र के लिए भगवान् नारायण की उपासना की। उससे भगवान् प्रसन्न होकर राजा को एक पुत्र प्रदान किये। जो पराभव संवत्, माघमास, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र में भगवान् के कौस्तुभ-मणि के अंश से प्रादुर्भूत हुआ। राजा दृढ़व्रत अत्यन्त तेजस्वी और सुन्दर पुत्र को देखकर आनन्द-मग्न हो गए। उन्होंने ब्राह्मणों को विशेष दान दिया। नामकरण के समय परम तेजस्वी बालक का नाम कुलशेखर रखा गया। उस बालक के उचित समय पर चौलादि संस्कार किए गए। श्रीकुलशेखरजी ने 'साक्षीमात्र' नाम के गुरु की सन्निधि में रहकर सभी विद्याओं का अध्ययन किया। महाराजा दृढ़व्रत अपने तेजस्वी पुत्र के अलौकिक प्रभाव को देखकर परम सन्तुष्ट हो गए और समस्त राज्य का कार्य उन्हें सौंपकर तप के लिए वन में चले गए।

श्रीकुलशेखरजी धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। वे समान भाव से प्रजा का पालन करते थे। उन्हें प्रजा के प्रति पुत्रवत् स्नेह रहता था। श्रीकुलशेखरजी बाल्यकाल से ही भगवान् श्रीराम के चरणों में नैसर्गिक प्रेम करते थे। उभय विभूति नायक भगवान् नारायण के आज्ञानुसार श्रीविष्वक-सेन स्वामी ने राजा कुलशेखरजी को श्रीवैष्णवी दीक्षा देकर समस्त सात्त्विक शास्त्रों का ज्ञान करा दिया। राजा वैष्णव संस्कार के अनुसार उर्ध्वपुण्ड्र-तिलक धारण कर भगवान् श्रीराम की सेवा करते थे। उनकी सात्त्विक एवं निर्मल बुद्धि संसार-सागर से उद्धार के निमित्त चिन्तन करती रहती थी। श्री-कुलशेखर स्वामी अपने को भगवान् का दास समझ-कर सांसारिक मनुष्यों के साथ रहना पसन्द नहीं करते थे। जैसे विभीषण लङ्का, मित्र, धन आदि को त्यागकर श्रीराम के चरणों में समर्पित हो गए थे, वैसे ही श्रीकुलशेखरजी श्रीराम के चरण-कमलों में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिए थे। उन्हें अर्चावतारों में श्रीवेङ्कटेश तथा श्रीरङ्गनाथ में भी विशेष प्रेम था। श्रीकुलशेखरजी ने श्रीवेङ्कटेश भगवान् से प्रार्थना की है कि हे नाथ! आपके मन्दिर में मैं

सोपान (सीढ़ी) बनकर रहूँ। जिससे सतत आपके दिव्य मुखारविन्द का दर्शन से अपने नेत्रों को तृप्त करता रहूँगा।

एक समय उन्होंने श्रीरङ्ग माहात्म्य में सुना कि श्रीरङ्गपुरी में निवास करने की इच्छा मात्र से ही मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है। फिर श्रीरङ्गम् क्षेत्र में नित्य निवास करने का फल कहना ही क्या है। तदनन्तर राजा कुलशेखर ने श्रीरङ्गधाम की यात्रा करने का निश्चय किया और मन में विचार करने लगे कि धन, पुत्र, परिवारादि वस्तुएँ अनित्य हैं। इसलिए मुझे अब श्रीरङ्गपुरी में भगवान् रङ्गनाथ की सेवा करनी चाहिए। ऐसा निश्चय कर उन्होंने श्रीरङ्गपुरी की यात्रा की घोषणा कर दी। श्रीकुशेखर द्वारा अपनी प्रजा को त्यागकर श्रीरङ्ग यात्रा की घोषणा से मन्त्रियों को बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने विचार किया कि यदि राजा कुलशेखर एक बार भी श्रीरङ्गम् चले गए और वहाँ श्रीरङ्गनाथ भगवान् के सौन्दर्यमय दिव्य श्रीविग्रह के दर्शन कर लिए तो पुन: उनका केलिपट्टन में लौटना असम्भव है। अत: उनकी श्रीरङ्गयात्रा में हमें विघ्न उपस्थित करना चाहिए।

मन्त्रियों ने श्रीवैष्णवों को बुलाकर उनसे कहा कि राजा कुलशेखरजी कल प्रात:काल श्रीरङ्गम् के लिए प्रस्थान करने वाले हैं। यदि वे श्रीरङ्गम् चले गए तो पुन: उनका यहाँ लौटना सम्भव न होगा। अत: आपलोग कुछ ऐसा उपाय करें जिससे उनकी यात्रा स्थगित हो जाय। मन्त्रियों की प्रार्थना सुनकर श्रीवैष्णव महात्मा जिस समय राजा प्रस्थान करने वाले थे, उस समय वे सब उनके सामने आ गए। राजा ने उन्हें देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद लिया। उन्होंने विचार किया कि श्रीवैष्णव भागवतों की सेवा करना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। अत: श्रीकुलशेखर ने अपना श्रीरङ्गम् यात्रा का विचार स्थगित कर समस्त श्रीवैष्णवों की विधिवत् सेवा की। मन्त्रियों के द्वारा प्रेरित होकर आने वाले श्रीवैष्णवों की सेवा में प्रतिदिन व्यस्त रहने के कारण राजाकुलशेखर की श्रीरङ्ग यात्रा स्थगित हो जाती थी।

श्रीकुलशेखर स्वामी ने एक विद्वान् से सुना कि 'वेद प्रतिपाद्य परम पुरुष परमात्मा को श्रीराम रूप में अवतार लेने पर वेद वाल्मीकि के मुखारविन्द से रामायण रूप में प्रकट हो जाता है। अत: समस्त श्रीवैष्णवों को आजीवन श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का श्रवण करना चाहिए'। विद्वान् के वचन का प्रभाव श्रीकुलशेखर जी पर पड़ा। उससे उन्हें रामायण की कथा सुनने में विशेष अभिरुचि हुई। वे प्रतिदिन रामायण की कथा सुनने लगे। एक दिन एक महात्मा अरण्यकाण्ड की कथा कह रहे थे उस प्रसङ्ग में उन्होंने कहा कि 'खर-दूषण आदि चौदह हजार राक्षसों की सेना पञ्चवटी में श्रीराम के ऊपर चढ़ाई कर दी। श्रीराम अकेला हैं'। यह सुनकर प्रेमातिशय के कारण श्रीकुलशेखर जी को अतीत घटना प्रत्यक्षवत् प्रतीत होने लगी। अत एव उन्होंने भगवान् श्रीराम की सहायता के लिए चतुरङ्गिणी सेना को साथ लेकर चलने का निश्चय कर लिया। मन्त्रियों को राजा के इस असामयिक निर्णय से आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीवैष्णव महात्मा से प्रार्थना की कि राजा को समझाकर रोक लें। महात्मा ने रामायण के आगे का प्रसङ्ग वर्णन करते हुए राजा को बताया कि 'धर्मात्मा श्रीराम ने आधे क्षण में क्रूर कर्मा चौदह हजार राक्षसों की विशाल सेना का विनाश कर दिया। महर्षियों को भगवान् श्रीराम के इस अद्भुत पराक्रम को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई और जनकनन्दिनी श्रीजानकी ने प्रसन्नता से श्रीराम का आलिङ्गन किया'। विजय के इस पावन प्रसङ्ग को सुनकर श्रीकुलशेखर जी बहुत

प्रसन्न हुए। प्रसन्नतावश उन्होंने अपने शरीर के आभूषण उतार कर श्रीवैष्णवों को दान कर दिया। तदनन्तर राजा ने अपनी सेना को लौट जाने का आदेश दिया।

भगवान श्रीराम का प्रथम दर्शन—

राजा श्रीकुलशेखर की भगवान् श्रीराम एवं श्रीवैष्णवों के प्रति अनन्य भक्ति थी। उनकी सन्निधि में सदा श्रीवैष्णव रहते थे। यदि उनके पास कोई अवैष्णव आ जाय तो वह अवश्य श्रीवैष्णव बन जाता था। इस तरह उनके शासन काल में समस्त प्रजा श्रीवैष्णव बन गयी थी। राजा कुलशेखर जी प्रतिदिन श्रीवैष्णवों के साथ मौनव्रत धारण करके श्रीरामायण एवम् अन्य सात्त्विक पुराणों की कथा सुनते थे। कथा सुनाने वाले विद्वान् महात्मा श्रीराम की उत्कर्षता के ही प्रसङ्ग सुनाते थे। एक दिन कथा सुनाने वाले श्रीवैष्णव किसी कारणवश राजा के पास नहीं आये। उन्होंने उस दिन अपने पुत्र को भेज दिया। वह रामायण के रहस्य से अनभिज्ञ होने के कारण प्रसङ्ग पर ध्यान नहीं दिया। प्रसङ्ग था सीताहरण का। पण्डित ने कहा कि रावण संन्यासी वेष धारण कर पञ्चवटी में आया और सीता को हरकर लङ्का ले गया। राजाकुलशेखरजी यह प्रसङ्ग सुनते ही क्रोधावेश में होकर बोले कि दुष्ट पापात्मा रावण में यह सामर्थ्य है कि मेरे रहते हुए माता जानकी जी का अपहरण कर ले। मैं अभी उसकी लङ्का पुरी को भस्म करके माता जानकी को वापस लाता हूँ। यह कहकर उन्होंने अपनी समस्त सेना को लङ्का पर चढ़ाई करने का आदेश दे दिया और स्वयं भी तलवार तथा धनुष-बान लेकर सेना के आगे-आगे चलने लगे।

भगवान् श्रीराम की अनन्य भक्ति के कारण राजा को समझाने और वापस लाने की शक्ति किसी में नहीं रही। राजा की इस अद्भुत राम भक्ति को देखने के लिए देवतागण विमानों पर चढ़कर आकाश मार्ग से आने लगे। राजा कुलशेखर जी का आदेश से उनकी सेना समुद्र में प्रवेश कर लङ्का की ओर बढ़ने लगी। भक्तवत्सल करुणासागर भगवान् श्रीराम अपने भक्त की इस अद्भुत लीला को देखकर राजा के सन्मुख प्रकट होकर कहने लगे कि हे पुत्र! मेरे रहते हुए तुमने ऐसा श्रम उठाया, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। मैं युद्ध में रावण का विनाश कर जानकी जी को वापस ले आया हूँ। तदनन्तर भगवान् श्रीराम ने जानकी जी को उनके समक्ष उपस्थित कर दिया। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के दर्शन कर राजा कुलशेखर बहुत प्रसन्न हुए और सेना सहित भगवान् के साथ नगर की ओर प्रस्थान किए। मार्ग में भगवान् अकस्मात् अन्तर्धान हो गए। भगवान् को न देखकर राजा को अत्यन्त दुःख हुआ लेकिन वे क्षणभर में समस्त स्थिति को समझकर सेना को नगर की ओर चलने का आदेश दिया। उन्हें यह अनुभव हुआ कि मैंने प्रवचनकर्त्ता के मुख से रामायण प्रवचन में सीताहरण के प्रसङ्ग को सुनकर जो यह लङ्का पर चढ़ाई करने का उपक्रम किया ये सब गलत है।

प्रतिदिन राजा कुलशेखर जी श्रीवैष्णवों को उत्तम भोजन से सन्तुष्ट रखते थे। वे समस्त राज्य का भार श्रीवैष्णव महात्माओं के ऊपर छोड़कर भगवान्, भागवत एवम् आचार्य के दास रूप में अपने को अनुभव करते रहते थे। यह राजा का व्यवहार उनके मन्त्रियों को प्रिय नहीं लगता था। एक बार मन्त्रियों ने विचार किया कि महाराज अपना पूरा समय श्रीवैष्णवों के सङ्ग में व्यतीत करते हैं। सदा श्रीवैष्णवों से घिरे रहते हैं। इससे राज्य के कार्य में शिथिलता आ रही है। अतः मन्त्रियों ने हाथ जोड़कर राजा से निवेदन किया कि हे राजेन्द्र! मोक्षार्थी महात्माओं का कर्त्तव्य है भगवान् तथा भागवतों की सेवा करना और राजा का कर्त्तव्य

है अपनी प्रजा का पालन। अपने-अपने कर्त्तव्य के पालन से दोनों को सुख मिलता है। मन्त्रियों की बात सुनकर राजा कुलशेखर ने कहा कि मुक्ति और भुक्ति ये दोनों श्रीवैष्णवों की प्रसन्नता से प्राप्त होती है। अत: श्रीवैष्णव महात्मा ही मेरे प्राण हैं। आपलोग जो मुझे श्रीवैष्णवों से विमुख करना चाहते हैं यह मुझे असह्य है। मन्त्रीगण राजा और श्रीवैष्णव महात्मा में मतभेद कराने के लिए उपाय खोजने लगे।

भगवान् श्रीराम का द्वितीय बार दर्शन—

एक समय राजा कुलशेखर जी अपने बहुमूल्य आभूषणों से विभूषित होकर राजसिंहासन पर बैठे हुए थे। उसी समय परम भागवत श्रीवैष्णव वहाँ आ गए। राजा ने अपने सिंहासन से उतरकर उन श्रीवैष्णवों को साष्टाङ्ग प्रणाम करके उचित सत्कार किया। महात्मागण सत्कृत होने के बाद भगवत्कथा कहने लगे। राजा दोपहर तक श्रीवैष्णव सन्तों के पास बैठकर कथा रस पान करते रह गये। तदनन्तर वे सन्तों से आज्ञा लेकर मध्याह्न स्नान के लिए चले गये। अपने आभूषणों को सिंहासन पर रख दिये थे। स्नान, तिलक एवं सन्ध्यावन्दन के बाद राजा कुलशेखरजी जब अपने सिंहासन पर आये तो वहाँ आभूषण नहीं थे। उन्होंने मन्त्रियों से पूछा कि मैं आपलोगों के समक्ष ही सिंहासन पर आभूषण रखा था वे क्या हो गये। तुमलोग शीघ्र उनका पता लगाओ नहीं तो मैं तुमलोगों को दण्डित करूँगा। मन्त्रियों ने हाथ जोड़कर राजा से कहा कि महाराज इतनी देर में यहाँ दूसरा कोई व्यक्ति नहीं आया है। केवल श्रीवैष्वण महात्मा ही यहाँ आये थे। बार-बार रोकने पर भी वे नहीं मानते। कभी कहीं भी घुस जाते हैं। अत: उनलोगों के अतिरिक्त आभूषणों की चोरी करने वाला अन्य व्यक्ति नहीं है।

मन्त्रियों के मुख से श्रीवैष्णवों की निन्दा और उनके ऊपर मिथ्या आक्षेप के पापमय वचन सुन कर राजा कुलशेखर ने मन्त्रियों को दण्ड देने के लिए मन में निश्चय करके उनसे कहा कि संसार में सब पाप भगवान् श्रीमन्नारायण के नाम स्मरण से मिट जाते हैं और भगवान् की निन्दा करने से जो पाप उत्पन्न होते हैं वे श्रीवैष्णव महात्माओं की स्तुति करने से नष्ट हो जाते हैं; परन्तु श्रीवैष्णवों की निन्दा करने से जो पाप होते हैं वे किसी उपाय से नहीं मिट सकते। अत: तुमलोगों ने जो श्रीवैष्णवों की निन्दा की है उस अपराध के कारण आज तुम लोगों को दण्डित करता हूँ। इसमें मेरा अपयश नहीं अपितु श्रीवैष्णवों पर लगाये गये चोरी के आरोप का मार्जन है। अब मैं सर्वप्रथम सबके सामने उन श्रीवैष्णवों की निर्मलता को प्रमाणित करूँगा। यह कहकर राजा कुलशेखर ने एक भयङ्कर सर्प को मिट्टी के घड़े में रखकर राज्यसभा में मँगवाया और सबको सम्बोधित करके कहा कि श्रीवैष्णव महात्मा संसार के विषयों से तृष्णा रहित हैं, वे कदापि चोर नहीं हैं। मैं इस बात को आप सबके सम्मुख प्रमाणित कर रहा हूँ। यदि महात्मा निर्दोष हैं तो यह विशैला सर्प मुझे नहीं डँसेगा, ऐसा कहकर राजा ने घड़े का ढक्कन उठाकर अपना हाथ उसमें डाल दिया। उन्होंने घड़े में रखे हुए सर्प को अपने हाथ से बार-बार स्पर्श किया; परन्तु वह विषैला सर्प राजा के हाथ को छुआ तक नहीं, काटना तो दूर रहा। इस आश्चर्यमय कार्य को देखकर आकाश से देवताओं ने राजा पर पुष्पों की वर्षा की और दुन्दुभि बजाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट किया।

इस कठिन एवं पवित्र कार्य से प्रसन्न होकर राजा के समक्ष भगवान् श्रीराम प्रकट हो गए। उन्होंने कृपा-कटाक्ष से राजा को देखते हुए, उनसे कहा कि राजन्! आज मैं आपकी श्रीवैष्णव भागवत

निष्ठा से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तदनन्तर भगवान् ने राजा का प्रेमालिङ्गन किया। प्रेमालिङ्गन करके वर माँगने के लिए कहा। राजा ने हाथ जोड़कर भगवान् से निवेदन किया कि हे प्रभो! आपकी पूर्णकृपा से दास के पास किसी वस्तु की कमी नहीं है, फिर भी यदि आपको वरदान देने की इच्छा है तो एकमात्र यही वरदान दीजिए कि दास की श्रद्धा भक्ति सदैव आपके चरणकमलों में बनी रहे। राजा कुलशेखर की एक पुत्री थी जो नीला देवी के अंश से उत्पन्न हुई थी। भगवान् ने उसे प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। राजा ने प्रसन्न होकर अपने सुपुत्री का विधिवत् भगवान् श्रीरङ्गनाथ के साथ पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कर दिया। भगवान् श्रीराम और श्रीरङ्गनाथ जी दोनों एक ही तत्त्व हैं। भगवान् के चले जाने पर राजा के अद्भुत चरित्र और प्रभाव को देखकर मन्त्रीगण अत्यन्त भयभीत हो गये और जिन आभूषणों को चुराया था, उन्हें राजा के सामने रखकर अपराध क्षमा करने की याचना की। राजा ने मन्त्रियों के अपराधों को क्षमा कर दिया और अपने पुत्र को शासन का भार सौंपकर श्रीवैष्णव महात्माओं की सेवा में समय व्यतीत करने लगे।

श्रीरङ्गम् की यात्रा सफल—

राजाकुलशेखर जी रामनवमी के पुण्य महोत्सव पर भगवान् श्रीराम के तिरुमञ्जन अभिषेक की तैयारी में संलग्न थे। भगवान् के सब बहुमूल्य आभूषण उतार कर एक तरफ रख दिये थे। जब तिरुमञ्जन के बाद शृङ्गार का समय आया तो राजा कुलशेखर ने देखा कि भगवान् का एक बहुमूल्य मोतियों की हार गायब है। जब बहुत खोज की गयी तो मन्त्रियों ने पुनः हार चुराने का आक्षेप श्रीवैष्णव महात्माओं पर लगाया। यह सुनते ही राजा ने फिर पहले के समान भागवत निन्दा को महान् पाप बताते हुए भगवत्कृपा से ऐसा चमत्कार दिखाया कि मन्त्रियों ने तत्काल हार लाकर उनके समक्ष रख दिया और अपने अपराधों के लिए क्षमा याचना की।

राजाकुलशेखर जी कुत्सित भावनापूर्ण श्रीवैष्णव निन्दा रूप कार्य से असन्तुष्ट हो राज्य का सारा कार्यभार अपने पुत्र को सौंपकर श्रीवैष्णव महात्माओं को साथ लेकर श्रीरङ्गम् चले गये। वहाँ श्रीरङ्गनाथ भगवान् के दर्शन से उनको बड़ा आनन्द मिला। वहाँ रहकर उन्होने द्रविड़ भाषा में 'देवीगीत' नामक प्रबन्ध की रचना की। इस प्रबन्ध में भगवान् एवं भागवतों के वैभव का प्रतिपादन किया गया है। देवीगीत में १०५ गाथायें और सात दिव्य देशों का मंगलाशासन है, जो क्रमशः श्रीरङ्गक्षेत्र में रङ्गनाथ भगवान्, वृषभाचल में श्रीनिवास भगवान्, अयोध्या में श्रीराम भगवान्, चित्रकूट में गोविन्द जी, कृष्णपुरी में सौरीराज भगवान्, बानाचल में सुन्दरांग और वराह नाथ भगवान् का मङ्गलाशासन है।

भगवान् श्रीरङ्गनाथ की कृपा से राजा कुलशेखर जी ने द्रविड़ भाषा में १०० गाथाओं से युक्त एक महाप्रबन्ध भी बनाया। तदनन्तर अनेक दिव्य देशों में भगवान् का दर्शन करते हुए पाण्ड्यदेशीय श्रीगोपाल भगवान् की सन्निधि में रहकर महाप्रयाण किया।

राजा कुलशेखर ने अपने आपको सदा भगवान् श्रीराम एवं श्रीवैष्णव के निर्मल प्रेम में आप्लावित रखा। उनकी अपूर्व निष्ठा के फलस्वरूप भगवान् श्रीराम ने उन्हें अपने दिव्य स्वरूप का दो बार दर्शन दिया। अतः श्रीकुलशेखर जी एक महान् श्रीवैष्णव आलवार सन्त थे। सभी महापुरुषों ने उनके दिव्य चरित्र का अध्ययन कर अपने को महान् भाग्यशाली कहा है। जो इस आलवार के चरित्र को पढ़ते और सुनते हैं वे भगवान् एवं भागवतों के चरणों में निर्मल प्रेम प्राप्त कर मुक्ति के भाजन होते हैं।

—०००—

श्रीविष्णुचित्त–आलवार

मिथुने स्वातिजं विष्णो रथांशं धन्विनः पुरे ।
प्रपद्ये श्वशुरं विष्णोर्विष्णुचित्तं पुरः शिखम् ।।

गुरुमुखमनधीत्य प्राहवेदानशेषान्,
नरपतिपरिक्लृप्तं शुल्कमादात्तुकामः ।
श्वसुरममरवन्द्यं रङ्गनाथस्य साक्षात्,
द्विजकुलतिलकन्तं विष्णुचित्तं नमामि ।।

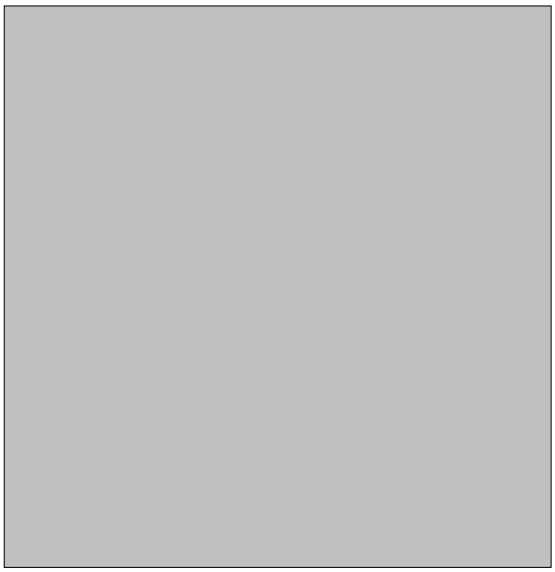

केरल प्रदेश में धन्वीपुर नाम का एक महान् दिव्यदेश है। जहाँ वेदज्ञों में श्रेष्ठ एक मुकुन्दाचार्य नाम के महात्मा थे। उनकी पत्नी का नाम पद्मावती था। श्रीमुकुन्दाचार्य जी ने सन्तान की कामना से पत्नी सहित वटपत्रशायी भगवान् केशव की विधिवत् उपासना करके प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर केशव भगवान् ने पुत्र के लिए वरदान दिया। पद्मावती गर्भवती हुई, उससे क्रोधन संवत्सर, ग्रीष्मऋतु ज्येष्ठमास शुक्लपक्ष एकादशी तिथि स्वाति नक्षत्र रविवार के दिन गरुड़ के अंश से एक पुत्र का जन्म हुआ। जो भट्टनाथ से प्रसिद्ध हुए। वे ही भगवान् विष्णु में अतिशय प्रेम के कारण विष्णुचित्त नाम से विभूषित हुए। श्रीमुकुन्दाचार्य ने बालक विष्णुचित्त का विधिवत् जातकर्मादि संस्कार कराया। श्रीविष्वक्सेन स्वामी ने वैकुण्ठ से भूतल पर आकर श्रीविष्णुचित्त को श्रीवैष्णवी दीक्षा दी। भगवान् श्रीविष्णु के कृपाकटाक्ष के कारण बालक विष्णुचित्त जन्म से ही प्रह्लाद के समान परम भक्त थे। उन्होंने विचार किया कि श्रीवैष्णवों का स्वरूप है भगवान् का नित्यकैङ्कर्य करना। अतः मुझे कोई विशेष भगवत् कैङ्कर्य करना चाहिए। उन्होंने दशावतारों के दिव्यचरित्रों का गहन अध्ययन किया। उस समय से उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण में विशेष आस्था हो गई। श्रीविष्णुचित्त को यह निश्चय हो गया कि शेषशय्या पर क्षीर-सागर में निवास करने वाले भगवान् ही मथुरापुरी में श्रीकृष्ण रूप में अवतरित हुए हैं। अतः वे बार-बार उनकी लीलाओं के अनुसंधान करते हुए कहते हैं कि 'दोनों विभूतियों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण साधुओं की रक्षा के लिए अवतार लेकर मथुराधीश बने हैं। जो भगवान् ब्रह्मा, रुद्र और सनकादियों के ध्यान में नहीं आते, वे परमात्मा भक्तों के लिए सुलभ बनकर श्रीनन्द जी के यहाँ विराज रहे हैं। गोपियों के अधीन होकर उनकी उच्छिष्ट पुष्पमालाओं को धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण माखन की चोरी में अत्यन्त ताड़ित किये गए हैं। ये सब लीला बिहारी की मधुरमयी बाल-लीलाएँ हैं'। धन्वीपुर में एक मन्दिर था जिसमें वटपत्र पर शयन किए हुये भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य मङ्गलमयी मूर्ति थी। स्वामी श्रीविष्णुचित्त जी प्रतिदिन सुन्दर, सुगन्धित पुष्पों एवं तुलसी की माला बनाकर भगवान् वटपत्रशायी केशव को

समर्पित करने लगे। वे सतत तुलसी-फूल लगावें और माला बनाकर भगवान् की सेवा में समर्पित करें। इससे समस्त श्रीवैष्णव मण्डली में उनकी ख्याति फैल गयी।

धन्वीपुर से उत्तर पाँच योजन दूरी पर मथुरा नाम की एक नगरी थी। वहाँ श्रीवल्लभदेव नाम के राजा राज्य करते थे। उनके राज्य में प्रजा विशेष सुखी रहती थी। एक दिन प्रजा की स्थिति को समझने के लिए वे आधी रात में नगरी में भ्रमण कर रहे थे। किसी घर के चबूतरे पर अकेले सोये हुए एक ब्राह्मण पर राजा की दृष्टि पड़ी। उन्होंने ब्राह्मण को जगाकर उनसे पूछा की आप यहाँ क्यों सोये हुए हैं? ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि राजन्! मैं तीर्थ यात्री ब्राह्मण हूँ। गङ्गा स्नान करके सेतु स्नान की इच्छा से यहाँ आया हूँ। ब्राह्मण के वचनों से प्रसन्न होकर राजा ने प्रणाम करके कहा कि यद्यपि मैं आपके दर्शन से ही कृतकृत्य हो गया फिर भी आप मेरे कल्याण के लिए कोई पद्य सुनायें। ब्राह्मण ने राजा को निम्नलिखित पद्य सुनाया—

वर्षार्थमाष्टौ प्रयतेत् मासान्निशार्थमेव दिवसं यतेत ।
वार्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिह जन्मना च ।।

इसका भाव यह है कि वर्षा काल में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए आठ मास तक सामग्रियों का संग्रह करे। रात्रि सुख पूर्वक व्यतीत करने के लिए दिन में ही साधन का प्रबन्ध कर ले। वृद्धावस्था में सुख के लिए युवावस्था में द्रव्यादि वस्तुओं का संग्रह कर ले और परलोक के लिए जन्म से ही प्रयत्न करना चाहिए। इस पद्य को सुनकर राजा ने विचार किया कि संसार में दो प्रकार के विषय हैं, दृष्ट और अदृष्ट। उनमें दृष्ट भी अदृष्ट का साधन होता है। संसार के सुख भोग के लिए मेरे पास दृष्ट (प्रत्यक्ष) साधन की कमी नहीं है। मुझे अदृष्ट फल परलोक के लिए प्रयास करना चाहिए। राजा ने यह विचार किया कि देवता अनेक हैं। उनमें मोक्षप्रद देव कौन हैं यह संशय है। राजा के पुरोहित का नाम श्रीसम्पत्पूर्ण था। राजा ने उन्हें बुलाकर कहा कि पुरोहितजी! सृष्टि, पालन और मोक्ष देने वाले कौन देव हैं? आप इसका निर्णय कर दें। राजा के वचनों से प्रसन्न पुरोहितजी ने कहा कि राजन्! यह धर्म प्राण राज्य है। परदेव का निर्णय वैदिक सिद्धान्त के अनुसार होना चाहिए। एतदर्थ आप विद्वानों की सभा बुलाकर शास्त्रार्थ द्वारा परदेव (परतत्त्व) का निर्णय करायें।

पुरोहित के वचन से प्रसन्न राजा ने विशेष तैयारी के साथ सभा का आयोजन किया। परतत्त्व निर्णायक विद्वान् के लिए विशेष पुरस्कार की व्यवस्था की गयी। मथुरापुरी में विद्वानों की सभा हुई। उसमें अनेक दिनों तक शास्त्रार्थ होता रहा; परन्तु कुछ भी निर्णय नहीं हुआ। निष्फल प्रयास के कारण दु:खी राजा को देखकर भगवान् ने निर्णय लिया कि श्रीविष्णुचित्त के द्वारा ही परतत्त्व का निर्णय कराया जाय। इसके लिए वटपत्रशायी भगवान् ने श्रीविष्णुचित्त को स्वप्न दिया कि आप मथुरापुरी में जाकर यह निर्णय कर दें कि परतत्त्व भगवान् विष्णु ही हैं। श्रीविष्णुचित्त को विशेष वेद शास्त्र का ज्ञान नहीं था; क्योंकि ये सदा तुलसी, पुष्प उपजाकर भगवान् की सेवा करते थे; परन्तु जैसे भगवान् अशिक्षित ध्रुव को गला में शङ्ख का स्पर्श कराकर समस्त शास्त्रों का ज्ञान करा दिये थे वैसे ही स्वप्न में भगवान् का आदेश होते ही उनकी कृपा से श्रीविष्णुचित्त को समस्त वैदिक सिद्धान्त प्रतिपादक प्रमाणों का ज्ञान हो गया।

वे भगवान् के आदेशानुसार मथुरापुरी की राज सभा में उपस्थित हुए। राज पुरोहित ने उनका सत्कार नहीं किया। उसने अज्ञानवश राजा से कहा कि राजन्! यह विष्णुचित्त न वेदों को सुना है, न गायत्री जानता है और सन्ध्या-वन्दनादि कृत्यों से

भी सदा विमुख ही रहता है। यह उद्यान में रहकर तुलसी, पुष्पों की माला बनाकर माली के समान अपना जीवन यापन करता है। वेद-शास्त्र ज्ञान विहीन शूद्रवत् यह विष्णुचित्त विद्वद्गोष्ठी में पूजा के योग्य नहीं है। राजावल्लभदेव को पुरोहित का वचन अप्रिय लगा। उन्होंने श्रीविष्णुचित्त स्वामी को परतत्त्व निर्णय करने के लिए प्रार्थना की। श्रीविष्णु-चित्तजी शास्त्रार्थ के आसन पर बैठ गये और वेद, स्मृति, इतिहास, पुराणादि ग्रन्थों के प्रमाणों को देते हुए यह सिद्ध कर दिये कि भगवान् नारायण ही जगत् के उपादान एवं निमित्त कारण होने के कारण श्रेष्ठ देव हैं। वे ही जीवों को मोक्ष प्रदान करते हैं, नेति-नेति कहकर वेदान्त शास्त्र भी नारायण तत्त्व का ही प्रतिपादन करता है। अत एव शास्त्र का उद्घोष है—

वेद शास्त्र परं नास्ति न देवः केशवात्परः ।

अर्थात् वेद शास्त्र से श्रेष्ठ दूसरा शास्त्र नहीं और केशव भगवान् से महान् कोई दूसरा तत्त्व (देव) नहीं। इस तरह वेदान्तादि शास्त्रों के द्वारा भगवान् विष्णु ही परतत्त्व हैं ऐसा प्रतिपादन करते ही राजा के द्वारा स्तम्भ में बँधा हुआ विजय पुरस्कार श्रीविष्णुचित्त स्वामी के सामने टूटकर गिर पड़ा। यह देखकर विद्वत्मण्डली सहित राजा को महान् आश्चर्य हुआ, वे अपार श्रद्धा पूर्वक श्रीविष्णु-चित्त स्वामी को साष्टाङ्ग प्रणाम कर विजय पुरस्कार उनके चरणों में समर्पित कर दिए। इसलिए श्री-विष्णुचित्त स्वामी के स्तवन काल में कहा जाता है—

'गुरुमुखमनधीत्य प्राहवेदानशेषान्
नरपतिपरिक्लृप्तं शुल्कमादात्तुकामः' ।

अर्थात् विना गुरु मुख से पढ़े समस्त वेदों को कहे और राजा के द्वारा निश्चित शुल्क (पुरस्कार) को प्राप्त किए। जिस समय श्रीविष्णुचित्त स्वामी को विजय पुरस्कार द्वारा राजा सत्कार कर रहे थे, उस समय भगवान् विष्णु जगत् माता श्रीलक्ष्मी के साथ प्रकट होकर विष्णुचित्तसूरि को दर्शन दिये। श्रीविष्णुचित्त स्वामी मथुरापुरी से आकर धन्वीपुर में वटपत्रशायी भगवान् को प्रणाम करके राजा से प्राप्त सम्पूर्ण सम्पत्ति को भगवान् की सेवा में समर्पित कर दिये और पूर्ववत् तुलसी एवं पुष्प की माला से भगवान् की सेवा में संलग्न हो गये।

श्रीविष्णुचित्तस्वामी वटपत्रशायी भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा के लिए नये-नये तुलसी के पौधों को लगाने हेतु गड्ढा खोद रहे थे। उस गड्ढे से आषाढ़ कृष्णपक्ष चतुर्थी, मङ्गलवार, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के तुला लग्न में एक अतिसुन्दरी बालिका प्रकट हुई—

कर्कटे पूर्वफाल्गुन्यां तुलसीकाननोद्भवाम् ।
पांड्ये विश्वम्भरां गोदां वन्दे श्रीरङ्गनायकीम् ।।

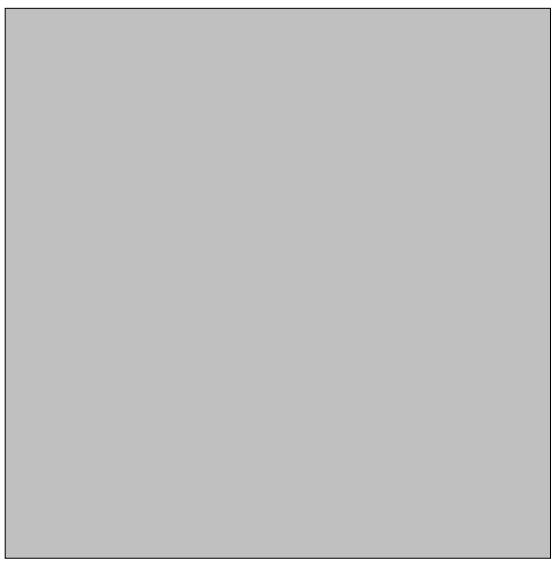

जो गोदा नाम से प्रसिद्ध हुई। जैसे राजा जनक के हल जोतते समय श्रीलक्ष्मीजी सीता रूप में प्रकट हुई थी उसी प्रकार श्रीविष्णुचित्त के द्वारा तुलसी पौधों को लगाने के लिए खने गये गड्ढे से श्रीभूदेवी के अंश से श्रीगोदाजी का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीविष्णुचित्तसूरि को जब यह बालिका मिली तो

उन्हें अतिप्रसन्नता हुई। वे उस बालिका को अपनी पुत्री के समान पालने-पोषने लगे, उसे सूरिजी शङ्ख चक्राङ्कित करके गोदा नाम रखे। गोदा अपने पिता के घर में प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसे अवस्था के अनुसार भगवान् विष्णु के प्रति उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ने लगा। श्रीविष्णुचित्तसूरि भगवान् के लिए माला तैयार करते थे। उस समय गोदाजी भी पिता के साथ रहकर माला बनाने में सहयोग करती थी। श्रीविष्णुचित्त जी माला बनाकर पेटी में रख देते थे। उनके अनुपस्थित हो जाने पर गोदाजी भगवान् के लिए निर्मित माला को अपनी गला में पहन लेती और पुन: पिताजी के देखने के भय से शीघ्र ही निकाल कर पेटी में रख देती थी। गोदा बराबर ऐसा ही करती थी। एक दिन श्रीविष्णुचित्त ने अपनी पुत्री को माला धारण किए हुए ही देख लिया। उन्हें यह अप्रिय लगा। वे समझ गये कि यह माला अब भगवान् के योग्य नहीं रह गयी। अत: वे उस दिन मन्दिर में भगवान् के पास माला नहीं ले गये। श्रीविष्णु-चित्तजी गोदा से कहे कि पुत्रि! यह तुमने अनुचित किया है। भगवान् के लिए तैयार की गयी माला पहले अपने उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

रात्रि में श्रीविष्णुचित्तसूरि सोये हुए थे, उस समय वटपत्रशायी भगवान् ने उन्हें स्वप्न में कहा कि आज आपने मुझे गोदा के द्वारा धारण की गयी माला अर्पित नहीं की। मुझे वही माला अभीष्ट है जिसे गोदा पहन लेती है। भगवान् के वचनों से सूरिजी को आश्चर्य हुआ और उस दिन से वे गोदा देवी की पहनी हुई माला भगवान् को समर्पित करने लगे। अत एव श्रीगोदा जी को निम्नलिखित श्लोक से प्रणाम करते हैं—

नीलातुंगस्तन गिरितटी, सुप्तमुद्बोध्य कृष्णं
पारार्थ्यं स्वं श्रुतिशतशिरस्सिद्धमध्यापयन्ती।
स्वोच्छीष्टायां स्रजिनिगलितं, या बलात्कृत्य-
भुङ्क्ते गोदातस्यै नम इदमिदं भूप एवास्तुभूयः।।

गोदा देवी यौवनावस्था को प्राप्त कर ली। श्रीविष्णुचित्तसूरि गोदा के विवाह के लिए चिन्तित होने लगे। गोदा जी उसे समझ कर अपने पिता से कही कि आप अधिक चिन्तित न हों। मेरा विवाह भगवान् को छोड़कर दूसरे के साथ नहीं होगा। पुत्री की बात सुनकर अधिक प्रसन्नता के साथ सूरिजी ने कहा कि भूतल पर १०८ दिव्य देशों में भगवान् की अर्चामूर्तियाँ हैं। मैं उनके चरित्र का गान करता हूँ। उनमें तुम्हें जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न करने का विचार हो उनके साथ हो जायेगा। श्रीविष्णुचित्त स्वामी ने १०८ दिव्यदेशों के भगवान् के चरित्रों का वर्णन किया। श्रीगोदाजी को उनमें भगवान् रङ्गनाथजी का दिव्य मङ्गल विग्रह विशेष प्रिय लगा।

जैसे वृन्दावन की गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए अगहन मास में प्रतिदिन यमुना में स्नान करके कात्यायनी देवी की उपासना करती थी वैसे ही धनुर्मास की सङ्क्रान्ति में गोदाम्बा जी भी एक शाम हविष्यान्न भोजन कर भगवान् श्रीरङ्गनाथ की पूजा करके प्रार्थना करती थीं—

रङ्गेश करुणासिन्धो! मत्पाणिग्रहणं कुरु।
त्वां विनान्यं न जानामि सत्यं वच्मि नमोस्तु ते।।

अर्थात् हे करुणा सागर! भगवान् रङ्गनाथ! आप मेरा मङ्गलमय पाणिग्रहण कर लें। आपको छोड़कर मैं किसी दूसरे को नहीं जानती, यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

श्रीगोदा एवं रङ्गनाथ का विवाह

भगवान् श्रीरङ्गनाथ ने धन्वीपुर में आकर अपने दिव्यमङ्गलमय विग्रह का दर्शन गोदाजी को कराया। तदनन्तर श्रीरङ्गनाथ भगवान् श्रीगोदादेवी के चित्त का अपहरण कर श्रीरङ्गम् चले गये। उन्हें चले जाने पर श्रीगोदाजी उनके विरह में अत्यन्त व्यथित रहने लगी। जिस तरह भगवान् श्रीकृष्ण को वृन्दावन से

मथुरा चले जाने पर गोपियों की दशा हो गयी थी, उसी तरह की दशा श्रीगोदाजी की हो गयी। अपनी पुत्री को अत्यन्त दु:खी देखकर श्रीविष्णुचित्तसूरि यह विचार करने लगे कि श्रीरङ्गनाथ भगवान् देवता हैं, उनके साथ इसका पाणिग्रहण संस्कार कैसे होगा? इसके लिए अत्यन्त चिन्ताग्रस्त श्रीविष्णु-चित्तसूरि श्रीरङ्गम् चले गये। वहाँ बिना भोजन किये भगवान् रङ्गनाथ के मन्दिर में सो गये। भगवान् अपने भक्त के कष्ट को देखकर उन्हें स्वप्न दिये कि आप अपनी पुत्री श्रीगोदादेवी को श्रीरङ्गम् ले आयें, मैं उनका पाणिग्रहण करूँगा। जिस दिन श्रीगोदाजी के धनुर्मास व्रत का अनुष्ठान पूरा हुआ उस रात्रि में भगवान श्रीरङ्गनाथजी उसे स्वप्न दिये कि मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ। श्रीविष्णुचित्तस्वामी ने अपने शिष्य श्रीवल्लभदेव को भी सूचित कर दिया। वे भी धन्वीपुर आ गये। श्रीसूरिजी गोदाजी को पालकी पर चढ़ाकर श्रीरङ्गम् के लिए यात्रा किये। पालकी के दोनों तरफ श्रीविष्णुचित्तजी एवं राजावल्लभदेवजी चल रहे थे। श्रीरङ्गनाथ भगवान् की सात प्रदक्षिणा करके श्रीगोदादेवी की सवारी चन्दन मण्डप में आयी। वहाँ श्रीरङ्गनाथ भगवान् की उत्सव मूर्ति थी। उन्हें अर्चक स्नान कराकर पीताम्बर आदि से अलङ्कृत कर दिये। वहाँ बीजारोपन किया गया। वैदिक ब्राह्मणों ने पुण्याहवाचन कर दिए। श्रीगोदाजी के विवाह महोत्सव को देखने के लिए तैंतीस करोड़ देवता उपस्थित हो गये। श्रीविष्णुचित्तसूरि ने भगवान् रङ्गनाथजी की उत्सव मूर्ति का विधिवत् मधुपर्क आदि से पूजन करके वैदिक मन्त्रोच्चारण पूर्वक श्रीगोदाजी के हाथ को उनके हाथ में समर्पित कर दिया। उसके बाद पृथ्वी से उत्पन्न श्रीगोदादेवी एवं श्रीसुन्दरबाहु भगवान् को वैदिक ब्राह्मणों ने आशीर्वाद देकर अन्त:पुर में प्रवेश कराया। तदनन्तर श्रीरङ्गनाथ भगवान् की सेवा करने की इच्छा से श्रीगोदादेवी हाथ जोड़कर भगवान् के चरणों के समीप शेषशय्या पर चढ़कर सबकी आँखों से ओझल हो गयीं। श्रीगोदाजी को सब प्रकार से अपनाकर श्रीरङ्गनाथ जी ने विष्णुचित्तसूरि से कहा कि आज से आप मेरे श्वसुर हो गए। तदनन्तर अर्चकों द्वारा श्रीसूरिजी तीर्थ प्रसाद आदि प्राप्त कर धन्वीपुरी को लौट गए और तुलसी, पुष्पादि से भगवान् की सेवा करने लगे। अत एव श्रीविष्णुचित्त स्वामी के लिए स्तुति करते हुए भक्तगण यह बोलकर प्रणाम करते हैं—

श्वसुरममरवन्द्यं रङ्गनाथस्य साक्षात्।
द्विजकुलतिलकन्तं विष्णुचित्तं नमामि।।

श्रीरङ्गनाथ भगवान् के साथ विवाह के बाद श्रीगोदादेवी रङ्गनायिका कहलाती हैं। दक्षिण भारत में गोदादेवीजी को 'आण्डाल' भी कहते हैं। आज भी सभी श्रीवैष्णव मन्दिरों में धनुर्मास में गोदाम्बा व्रत महोत्सव मनाया जाता है। गोदाम्बाजी धनुर्मास के तीस दिनों में प्रतिदिन व्रत के साथ एक-एक पद्य बनाकर भगवान् रङ्गनाथ से प्रार्थना करती थी। आज भी भक्तजन धनुर्मास में प्रतिदिन एक-एक पद्य का गान करते हैं। श्रीविष्णुचित्तसूरि ने दो उपदेश दिया है—१. जो लोग नारायण नाम का उच्चारण नहीं करते हैं वे महान् पापी हैं। २. जो भगवान् नारायण को अपने हृदय मन्दिर में स्थापित कर प्रेम रूपी सुमन से उनकी पूजा करते हैं, वे ही मृत्यु-पाश से छूटते हैं।

—०००—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

जो योगी भगवान् में अत्यन्त प्रेम-पूर्वक मन को लगाकर श्रद्धा के साथ उनका भजन करता है, वह सब योगियों से श्रेष्ठ योगी है।

श्रीभक्तांघ्रिरेणु-आलवार (श्रीविप्रणारायणजी)

कोदण्डे ज्येष्ठनक्षत्रे मंडंगुडिपुरोद्भवम् ।
चोलोर्व्यां वनमालांशं भक्ताघ्रिरेणुमाश्रये ।।

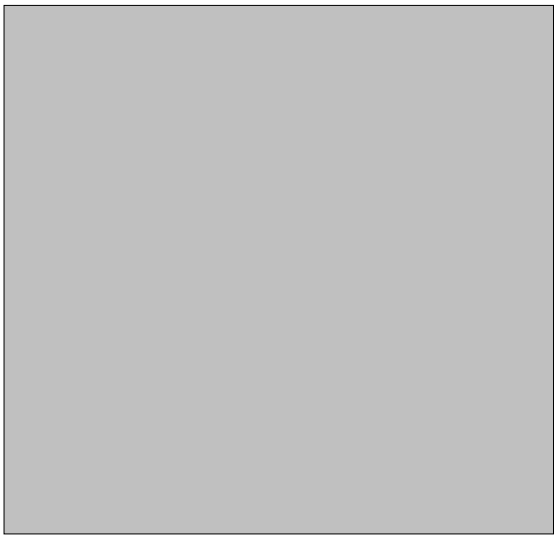

चोल मण्डल में मण्डगुडि नाम से प्रसिद्ध एक नगर था। वहाँ पुरश्रूड नाम के भगवद्भक्त ब्राह्मण रहते थे। सपत्नीक उनकी भगवत्सेवा में सदा अभिरुचि रहती थी। उनके घर धनुर्मास के धनिष्ठा नक्षत्र में एक बालक जन्म लिया, जिसका नाम विप्रनारायण रखा गया। वे भगवद्भक्तों के चरणरज को अपने कल्याण का साधन समझकर शिर पर धारण किया करते थे। इसीलिए वे भक्तांघ्रिरेणु नाम से प्रसिद्ध हुए। अन्घ्रि का अर्थ है चरण और रेणु कहते हैं धूलि को। अत: भक्तांघ्रिरेणु का अर्थ हुआ भक्तों के चरण की धूलि को धारण करने वाला। पूरश्रूड ने अपने पुत्र का समयानुसार चौलादि संस्कार कराया। श्रीविप्रनारायणजी ने गुरु के पास रहकर अल्प समय में समस्त वेद-वेदान्तादि शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। भगवत्कृपा से विप्रनारायणजी को एक विशेष ज्ञान का प्रकाश मिला। उससे उन्हें यह निश्चय हुआ कि सारी सांसारिक वासनाएँ जलती हुई आग की ज्वाला के समान है। सांसारिक कामों में आत्मस्वरूप के नाश का सदा भय रहता है। अत: श्रीरङ्गपुरी में रहकर तुलसी एवं पुष्पों की वाटिका लगावें और उन्हें ही तुलसी एवं पुष्पों की माला बनाकर उससे भगवान् रङ्गनाथ की सेवा करें। एतदर्थ वे उस काम में लग गए। श्रीविप्रनारायणजी इधर-उधर से जो कुछ माँगकर लावें उसे भगवान् को समर्पण करके भोजन कर लें। इसे ही मधुकरी वृत्ति कहते हैं। श्रीविष्णुचित्तसूरि की तरह वे भी तुलसी पुष्पों से भगवान् की सेवा में संलग्न रहने लगे। नन्दन-वन के समान उनका विशाल एवम् आकर्षक उद्यान था वे ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक उसी में निवास करते थे।

एक निचुला नाम की नगरी थी। वहाँ अतिसुन्दरी देवदेवी नाम की वेश्या रहती थी। उसकी सखी का नाम अलिवेणी था। देवदेवीवेश्या अपनी सखी अलिवेणी के साथ चोल नरेश के पास आयी। नरेश ने वेश्या के सौन्दर्य से मुग्ध होकर उसके लिए अपने आपको समर्पण कर दिया। कुछ दिन के बाद वह देवदेवी राजा से पुरस्कृत होकर अपनी नगरी की ओर लौट रही थी। उसे भगवान् रङ्गनाथ के दर्शन का मनोरथ हुआ। वेश्या अपनी सखी अलिवेणी के साथ श्रीरङ्गनाथ के दर्शन कर श्रीबिप्रनारायणजी के उद्यान में चली गयी। शीतल, मन्द, सुगन्ध भरे वायु के झोकों के साथ वहाँ चारों ओर पुष्पों का पराग उड़ रहा था। फलों से लदे वृक्षों की शाखाएँ झुक गई थीं। केला, आम आदि के सघन बाग में कोयल कुहक रही थी, पक्षियों का कलरव गुँज रहा था। पुष्पों की चारों ओर उन्मत्त

भ्रमर घूम रहे थे, उद्यान के किनारे पर कावेरी में स्वच्छ एवं शीतल जल की धारा बह रही थी, चारों ओर मादकता ही दिखाई पड़ती थी, किन्तु वहाँ संसार की विषय वासनाओं से परम विरक्त भगवद्भक्त युवक श्रीविप्रनारायण निर्लेप भाव से रहते थे। अपनी सखी के साथ वेश्या देवदेवी उनके पास आयी और उन्हें प्रणाम करके सामने खड़ी हो गयी। देवदेवी के अपरिमित सौन्दर्य वीतराग श्रीविप्रनारायणजी को प्रभावित नहीं कर सका। उदासीन श्रीविप्रनारायणजी को देखकर देवदेवी ने अपनी सखी से पूछा कि क्या यह पुरुष नपुंसक है? क्योंकि युवक परिपुष्ट शरीर वाला होते हुए भी मेरे इस अपरिमित सौन्दर्य की ओर देखता तक नहीं? उसकी सखी अलिबेणी ने कहा—ये नपुंसक नहीं हैं, भगवद्भक्त हैं। उनको तुम अपने सौन्दर्य से आकृष्ट नहीं कर सकती। यदि तुम इनको आकृष्ट कर लो तो मैं तुम्हारी छः महिनों तक दासी बनकर रहूँगी। अलिवेणी के यह तिरस्कार युक्त वचन को सुनकर देवदेवी ने भी प्रतिज्ञा की कि यदि मैं इनको आकृष्ट नहीं कर सकी तो मैं तुम्हारी छः मास तक दासी बनकर रहूँगी। इस तरह प्रतिज्ञा करके देवदेवी ने अपने घर आकर सम्पूर्ण अलङ्कारों को उतार दिया और मोटा वस्त्र पहनकर तथा ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण कर वह विप्रनारायणजी के पास आकर बोली कि हे भगवन्! मेरे पुरातन पापों के कारण मेरा वेश्या वंश में जन्म हुआ। माँ चाहती है कि मेरी पुत्री धनी पुरुष के पास रहकर वेश्यावृत्ति से धन उपार्जन करे; परन्तु मैं अपनी आत्मा को पतन की ओर नहीं ले जाना चाहती। यदि मैं माँ की आज्ञाओं का पालन करूँगी तो मुझे नरकगामी होना पड़ेगा। अतः मैं आपके पास आयी हूँ। आप मुझे अपनी शरण में रखें। आप जिन कैङ्कर्यों को करने का आदेश करेंगे मैं उन्हें करूँगी। जब आप मधुकरी के लिए जायेंगे तब मैं उद्यान की रक्षा करूँगी। आप जो कुछ भी भगवान् का भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करेंगे। उसी में से आपका प्रदत्त उच्छिष्टान्न ग्रहण करूँगी। अथवा फल-फूल आदि से ही अपना जीवन निर्वाह कर लूँगी। मैं अनाथ मुमुक्षु हूँ। अतः आप मेरी रक्षा करें। देवदेवी के वचनों को सुनकर श्रीविप्रनारायणजी ने उसे अपने यहाँ रहने के लिए आदेश दे दिया। देवदेवी वहाँ रहकर अपने नित्य-कृत्यों को करती हुई महात्मा के आदेशानुसार उद्यान की सेवा करने लगी। महात्मा श्रीविप्रनारायणजी माँगकर अन्न लावें और भगवान् का भोग लगाकर भोजन कर लें। उसी प्रसाद में से कुछ अंश देवदेवी को भी दे देते थे। देवदेवी महात्मा की आज्ञा से तुलसी और पुष्पों पौधों को लगाकर सींचती रहती थी। देवदेवी उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए प्रयास करती रहती थी; परन्तु श्रीविप्रनारायणजी कभी दृष्टि उठाकर देवदेवी की ओर नहीं देख सके। जब वह समझ गयी कि मेरे प्रयास से श्रीविप्रनारायणजी मेरी ओर नहीं झुकेंगे, तब अपने कार्य की सिद्धि के लिए भगवान् रङ्गनाथ से प्रार्थना करने लगी कि हे दयालो रङ्गनाथ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैंने अपनी अलिवेणी से प्रतिज्ञा की थी कि मैं श्रीविप्रनारायणजी को अपनी ओर आकृष्टकर लूँगी; परन्तु भागवतों को मेरी जैसी नारी कभी विचलित नहीं कर सकती। मेरी प्रतिज्ञा झूठी होने जा रही है। अतः हे प्रभो! आप कृपाकर उसे सत्य करा दें।

भगवत्प्रेरित माया का प्रभाव—

भगवान् रङ्गनाथ की सेवा में श्रीविप्रनारायणजी निष्काम भाव से लगे हुए थे। उन्हें भगवान् के प्रति निर्मल प्रेम था। देवदेवी सकाम भाव से श्रीरङ्गनाथजी से प्रार्थना करती थी कि श्रीविप्रनारायणजी मुझसे सम्बन्ध बना ले। भगवान् ने अपनी माया का प्रयोग कर श्रीविप्रनारायणजी के आत्मस्वरूप को तिरोहित कर दिया। उससे वे मोह में पड़ गये।

वर्षा ऋतु आयी, आकाश को चारों ओर से काले बादल आच्छादित कर लिये, बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट के साथ जोरों से वर्षा होने लगी। वायु के झोकों से वर्षा की बूँदों से चोट लग रही थी। देवदेवी प्रतिदिन महात्मा की कुटिया से बाहर ही सोती थी। उस दिन वर्षा से कष्ट होने पर भी भगवन्नाम का स्मरण करती हुई कुटिया से बाहर ही बैठी थी। भगवान् की माया से प्रभावित होने के कारण श्रीविप्रनारायणजी ने देवदेवी के कष्ट को समझकर कुटिया में बुला लिया। मुनि की आज्ञा पाते ही देवदेवी अपने को धन्य मानती हुयी कुटिया में प्रवेश कर गयी। महात्मा से अनुनय-विनय करती हुई उनके पैरों को दबाने लगी। शास्त्रों में नारी को अग्नि की ज्वाला के समान और पुरुषों को घी के समान कहा गया है। उन दोनों का सान्निध्य हानिकर है। फिर भी वेद-वेदान्त ज्ञान सम्पन्न श्रीविप्रनारायणजी ब्रह्मा, शङ्कर को भी मोहित कर देने वाली वेश्या के सम्बन्ध से बच न सके। श्रीविप्रनारायणजी देवदेवी का पाणिग्रहण कर उसके साथ बहुत काल तक वैषयिक जीवन बिताये। देवदेवी श्रीविप्रनारायणजी को वशवर्ती बनाकर अपने घर ले आयी और उसने अपनी सखी अलिवेणी को यह जानकारी दी कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। तदनन्तर श्रीविप्रनारायणजी भगवान् रङ्गनाथ के सभी कैङ्कर्यों तथा सन्ध्या-वन्दनादि समस्त नित्य कृत्यों का त्यागकर देवदेवी के साथ रम गये।

मुनि का कष्ट तथा माया से मुक्ति

देवदेवी ने श्रीविप्रनारायणजी को साक्षात् श्रीरङ्गनाय के समान मानती हुयी उनके चरणों की सेवा करती थी। देवदेवी की माँ ने जब यह देखा कि श्रीविप्रनारायणजी के पास धन नहीं है तो उसने विशेष निर्दयतापूर्वक उन्हें अपने घर से बाहर निकाल दिया। उस रात्रि को श्रविप्रनारायण देवदेवी के वियोग में व्याकुल हो उसके दरबाजे के बाहर चादर से अपना मुँह ढँक कर पड़े रहे। उस दिन आधी रात में सबों के सो जाने पर भगवती लक्ष्मी के साथ श्रीरङ्गनाथ भगवान् रङ्गपुरी क्षेत्र के निरीक्षण के लिए मन्दिर से निकलकर घूमने लगे। उन्होंने वेश्या के द्वार के सामने बाहर मुँह ढँककर सोये हुए विप्रनारायणजी को देखा। भगवान् से श्रीलक्ष्मीजी ने सोये हुए व्यक्ति का परिचय पूछा। भगवान् रङ्गनाथजी ने श्रीलक्ष्मीजी से कहा कि यह वही हमारा प्रियभक्त श्रीविप्रनारायण है, जो पहले सुगन्धित पुष्पों एवं तुलसी की मालाओं से प्रतिदिन हमलोगों की सेवा करता था। इस समय मेरी माया से भ्रमित होकर तथा अपने सारे वर्णाश्रम के कृत्यों को छोड़कर वेश्या का भक्त बन गया है। आज धन के अभाव में वेश्या उसे अपने घर से बाहर निकाल दी है। यह उसी के वियोग में उसके दरबाजे पर सो गया है। अपने भक्त का यह पतन सुनकर जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी भगवान् से बोली कि भगवन्! अब आप अपने भक्त को सांसारिक लीला का विषय न बनाकर अपने चरण की ओर खींच लीजिये। श्रीलक्ष्मी की यह प्रार्थना सुनकर भगवान् ने एक विचित्र लीला की।

उनके मन्दिर में पाँच स्वर्ण कलश थे। भगवान् ने एक दास बालक का वेष बना लिया और पाँचों कलशों में से प्रधान कलश को लेकर देवदेवी के दरबाजे पर पहुँचकर किबाड़ खटखटाया। देवदेवी ने उसका परिचय पूछा। बाहर से उत्तर मिला कि मैं श्रीविप्रनारायणजी का सेवक हूँ, मेरा नाम रङ्गदास है। उन्होंने आपके पास एक स्वर्णकलश भेजा है और स्वयं दरबाजे के आगे खड़े हैं। देवदेवी स्वर्ण-कलश लेकर कही कि विप्रनारायणजी को अन्दर भेज दो। तदनन्तर भगवान् रङ्गनाथ श्रीविप्रनारायणजी को अन्दर भेजकर श्रीलक्ष्मी के साथ अपने मन्दिर में शेषशय्या पर आराम के लिए चले गये।

प्रात:काल मन्दिर के अर्चकों ने प्रधान स्वर्ण-

कलश नहीं देखा। इसकी चर्चा सारे कर्मचारियों में फैल गयी। बहुत खोज करने पर भी स्वर्गकलश का पता नहीं चला। इस घटना की सूचना चोल-राजा को मिली। उसने अपने कर्मचारियों को भेजा। राजा के कर्मचारियों ने सन्दिग्ध अर्चकों को बहुत कष्ट दिया। पुन: कलश का पता लगाने के लिए गुप्तचर भेजे गये। उसी समय देवदेवी की दासी स्वर्णकलश लेकर कावेरी में जल भरने आयी। राजा के कर्मचारियों को ज्ञात हो गया। उन लोगों ने स्वर्णघट सहित दासी को पकड़ लिया और वे उससे समझकर उसके पति को विशेष दण्ड देने लगे। पति को पीटाते हुए देखकर दासी ने कर्म-चारियों को स्वर्ण कलश की सारी कहानी कह दी। कर्मचारियों ने देवदेवी सहित श्रीविप्रनारायण को पकड़कर चोलराज के सामने उपस्थित किया। चोरी के अभियोग में पकड़कर लायी गई देवदेवी ने बताया कि स्वर्ण घट विप्रनारायण ने ही अपने सेवक रंगदास द्वारा मेरे पास भेजा है। यह सुनकर विप्रनारायण ने कहा कि मैं अकिञ्चन व्यक्ति हूँ, मेरा कोई भी नौकर नहीं है। मैं मन्दिर के स्वर्णकलश को नहीं जानता हूँ। देवदेवी और विप्रनारायण ये दोनों अपनी-अपनी सफाई दे ही रहे थे कि चोलराज उनकी बातों से असन्तुष्ट होकर विप्रनारायण को कारागार में डाल दिया और देवदेवी को सिपाही के अधीन कर लिया। आधीरात में जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी ने रङ्गनाथ भगवान् से कहा कि प्रभो! विप्रनारायण पूर्व से ही आपका भक्त है। आपने ही उस पर माया का प्रभाव डालकर अपने स्वरूप से अलग कर दिया। उसी से वह वेश्या का भक्त बन गया। जिसका परिणाम हुआ कि आज उसे कारागार में महान् कष्ट मिल रहा है। अब आप उसको अपनी लीला का विषय न बनाकर शीघ्र ही अपनी ओर खींच लीजिए। भगवती लक्ष्मी की वात्सल्य भरी प्रार्थना सुनकर भगवान् रङ्गनाथ ने चोलराज को स्वप्न दिया कि मैंने ही स्वर्णकलश को विप्रनारायण का दास बनकर देवदेवी के यहाँ पहुँचा दिया था। विप्रनारायण मेरा पुत्र है। पिता जब चाहे तब अपनी वस्तु पुत्र को दे सकता है। अत: तुम शीघ्र ही विप्रनारायण को मुक्त कर दो। प्रात:काल राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा कि श्रीविप्रनारायण को शीघ्र मुक्त कर दो। वह निर्दोष है। तदनन्तर राजा ने श्रीविप्रनारायण से क्षमा याचना की।

कारागार से मुक्त होते ही श्रीविप्रनारायण के ज्ञान नेत्र खुल गये। उन्होंने वेद-वेदान्त-ज्ञान सम्पन्न भगवद्भक्त विद्वानों से पूछकर अपने पाप के प्रायश्चित का निर्णय किया कि मैं भगवान् की सेवा छोड़कर वेश्या में आसक्त हो गया था। अत: उससे मुक्ति के लिए श्रीवैष्णवों का तीर्थग्रहण करूँ; क्योंकि वह भगवान् के तीर्थ से भी अधिक पवित्र करने वाला है। जो भगवान् के भक्तों का चरणोदक अपने शिर पर चढ़ाता है उसे सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है। तदनन्तर श्रीविप्रनारायणजी ने अपने पापों का प्रायश्चित भक्तों के तीर्थों से किया। इसलिए भक्तांघ्रिरेणु के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक महात्मा ने एक विद्वान् से पूछा कि श्रीभगवान् ने गीता में कहा है— ***'न मे भक्त: प्रणश्यति'*** अर्थात् मेरे भक्त का नाश नहीं होता है। पुन: उन्होंने यह भी कहा कि जैसे अबोध बालक की रक्षा माँ करती है वैसे अपने भक्तों की रक्षा मैं करता हूँ। जब भगवान् परमदयालु तथा सदा भक्त के रक्षक हैं तो फिर वे अनन्य भक्त श्रीविप्रनारायणजी को अपनी माया से मुग्ध कर तथा वेश्यासक्त बनाकर विशेष कष्ट क्यों दिए?

विद्वान् ने उत्तर दिया कि जैसे भगवान् मन, वाणी से अगम्य हैं वैसे उनकी लीली भी विलक्षण और अगम्य है। देवदेवी और श्रीविप्रनारायण का चरित्र पूर्व जन्म से सम्बन्धित है। देवदेवी पूर्व जन्म में कुब्जा थी और श्रीविप्रनारायण श्रीकृष्ण के रूप

में थे। श्रीकृष्णावतार में कुब्जा की चाह थी कि दीर्घ काल तक श्रीकृष्ण मेरे पति बने रहें। भगवान् ने कहा था कि दूसरे जन्म में तुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी। अत: कुब्जा देवदेवी के रूप में आयी और श्रीविप्रनारायणजी श्रीकृष्ण के वनमाला के अंश से श्रीरङ्गम् क्षेत्र में अवतरित हुए।

श्रीविप्रनारायणसूरि अपने ज्ञान और भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचकर द्वादशसूरियों में प्रसिद्ध हुये। देवदेवी भी अपनी वेश्यावृत्ति त्यागकर भगवान् श्रीरङ्गनाथ जी के मन्दिर में ही रहकर नित्य कैङ्कर्य करती हुई निर्मल भक्ति प्राप्त कर वैकुण्ठ धाम चली गयी।

श्रीभक्तांघ्रिरेणुसूरि जी श्रीरङ्गनाथजी की तुलसी-पुष्पों की माला से सेवा करते हुए 'श्रीमाला और श्रीप्रबोधिनीस्तव' इन दो ग्रन्थों की रचना कर वैकुण्ठ चले गये।

—०००—

नूतन-गृह-प्रवेश

1. माघ-कृष्ण-एकादशी-गुरुवार 19-01-2012 को मिथुन लग्न 2:45 से 4:58 तक दिन में।
2. माघ-शुक्ल दशमी-गुरुवार 02-02-2012 को मीन लग्न 8:47 से 10:14 तक दिन में।
3. माघ-शुक्ल-एकादशी-शुक्रवार 03-02-2012 को मीन लग्न 8:42 से 10:09 तक दिन में।
4. माघ-शुक्ल-द्वादशी-शनिवार 04-02-2012 को मीन लग्न 7:07 से 08:37 तक दिन में।
5. फाल्गुन-कृष्ण-अष्टमी-बुधवार-15-02-2012 को मीन लग्न 07:52 से 09:19 दिन में।
6. फाल्गुन-शुक्ल-अष्टमी-गुरुवार 01-03-2012 को मिथुन लग्न 11:56 से 02:09 दिन में।

द्विरागमन-मुहूर्त्त

दक्षिण से उत्तर, नैऋत्य से ईशान एवं अग्नि से वायव्य कोण के लिए—

1. अगहन-कृष्ण-एकादशी-सोमवार 21-11-2011 को दिन में 06:30 से 08:38 तक।

पश्चिम से पूर्व एवं दक्षिण से उत्तर (दिक्शूल परिहारपूर्वक)—

2. अगहन-शुक्ल-षष्ठी-बुधवार-30-11-2011 को दिन में 08:01से 10:05 तक।
3. अगहन-शुक्ल-सप्तमी-गुरुवार 01-12-2011 को प्रातः 6 से 7:55 तक।

पश्चिम से पूर्व, अग्नि से वायव्यकोण (दिक्शूल परिहारपूर्वक) दक्षिण से उत्तर के लिए—

4. अगहन-शुक्ल-द्वादशी-बुधवार-07-12-2011 को प्रातः 7:30 से 9:35 तक ।

पश्चिम से पूर्व एवं दक्षिण से उत्तर और नैऋर्त्य से ईशान कोण के लिए—

5. फाल्गुन-कृष्ण-दशमी-शुक्रमार 17-02-2012 को 7:44 से 9:11 तक दिन में ।

दक्षिण से उत्तर और अग्निकोण से वायव्यकोण के लिए—

6. फाल्गुन-शुक्ल-तृतीया-शुक्रवार 24-02-2012 को 7:18 से 8:45 तक प्रातः ।
7. फाल्गुन-शुक्ल-पञ्चमी-सोमवार 27-02-2012 को 7:6 से 8:33 तक प्रातः ।

पश्चिम से पूर्व एवं नैऋर्त्य से ईशान कोण के लिए—

8 फाल्गुन-शुक्ल-अष्टमी-गुरुवार 1-3-2012 को 6:55 से 8:22 तक प्रातः

दक्षिण से उत्तर एवं अग्नि से वायव्य कोण के लिए—

9. फाल्गुन-शुक्ल-द्वादशी-सोमवार 5-3-2012 को 6:40 से 8:7 तक प्रातः

शेष पृ0 29 पर देंखे

श्रीमुनिवाहन–आलवार (श्रीपाणसूरि)

वृश्चिके रोहिणीजातं श्रीपाणिं निचुलापुरे ।
श्रीवत्सांशं गायकेन्द्रं मुनिवाहनमाम्रये ।।

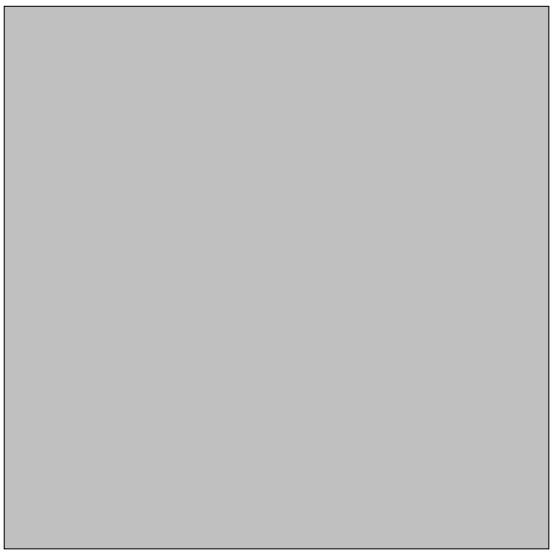

जिस नगरी में लक्ष्मी स्वरूपा श्रीनिचुलानायिका का प्रादुर्भाव हुआ था, उसी निचुलानगरी में १२२ वर्ष कलि बीतने के बाद दुर्मति संवत् कार्तिकमास पूर्णिमा तिथि सोमवार और रोहिणी नक्षत्र में ब्राह्मण के खेत में धान के बाल से एक बालक का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्हें भगवान् के श्रीवत्स का अवतार माना गया है। उस परम तेजस्वी तथा परममनोहर स्वरूप बालक पर एक शूद्र की दृष्टि पड़ी। वह बालक को अपने घर ले आया और उसे पुत्रवत् पालन-पोषण करने लगा। उसका नाम पाणसूरि रखा, जो आगे चलकर मुनिवाहन नाम से प्रसिद्ध हुए। भगवान् रङ्गनाथ उस पर विशेष कृपा कटाक्ष रखते थे। अत एव श्रीपाणसूरि जन्म काल से कभी रोये नहीं। भगवत्कृपा से उनमें कविता बनाने की अपूर्व शक्ति प्राप्त हो गयी थी। अत एव वे भगवान् रङ्गनाथ के गुणों का पद्य बनाकर गान करते रहते थे। जिन पर भगवान् की कृपा हो जाती है, वे सात्त्विक पुरुष भगवान् के अपरिमित ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज, बल और ज्ञानादि ऐश्वर्यों का चिन्तन करते हुए उनके चरण-कमलों में ही निर्मल प्रेम करते हैं। भगवद्गुणों का गान करते समय श्रीमुनिवाहनजी आनन्दाश्रुओं से आह्लादित तथा रोमाञ्चित हो जाते थे। उन्हें सांसारिक रसों का अनुभव नहीं होता था। उनके मन में यह भावना बनी रहती थी, कि मेरा जन्म नीच वर्ण में हुआ है। अत: भगवान् रङ्गनाथ की परम पवित्र नगरी श्रीरङ्ग को मैं अपने पैरों से कैसे स्पर्श करूँ। वहाँ मेरा जाना अनुचित और पाप कर्म समझा जायेगा। इसलिए श्रीमुनिवाहन निचुलापुरी की भूमि में बैठे-बैठे सात प्रकारों से घिरी श्रीरङ्ग नगरी को ज्ञान दृष्टि से दर्शन करते रहते थे। श्रीरङ्गम् में सारंग नाम से सुप्रसिद्ध एक महायोगी निवास करते थे। वे रङ्गनाथ भगवान् की सेवा में सदा संलग्न रहते थे।

एक दिन श्रीसारङ्गयोगी काबेरी के निर्मल जल के लिए सोना के घड़ा लेकर उसके तट पर गये। वहाँ श्रीपाणयोगी उपस्थित थे। श्रीसारङ्गयोगी उन्हें देखकर दूर से ही बोलने लगे कि हट जाओ, हट जाओ। श्रीपाणसूरि भगवान् के ध्यान में मग्न होकर निर्विकल्पक समाधि अवस्था में पहुँच गये थे। अत: उन्हें महायोगी द्वारा कहे गये हट जाओ ये वाक्य सुनने में नहीं आया। श्रीपाणसूरि की यह स्थिति देखकर श्रीरङ्गम् के श्रीवैष्णवों ने उन्हें ढोंगी समझा और ढेलों एवं पत्थरों से मारकर उनके प्रत्येक अङ्ग को घायल कर दिया; परन्तु भगवान् के स्वरूप में ध्यानमग्न होने के कारण श्रीपाणजी को

कुछ भी पता नहीं चला। उनकी यह स्थिति देखकर ब्राह्मण वैष्णव को आश्चर्य हुआ। तदनन्तर ध्यान खुलने पर श्रीपाणजी अपने आश्रम में चले गये। उस समय उन्हें शिला प्रहार से शरीर में कुछ भी वेदना नहीं हो रही थीं; परन्तु भगवान् रङ्गनाथ को भक्त के कष्ट से महान् कष्ट हो रहा था। उनकी मूर्ति के ललाट से रक्त की बूँदें टपकने लगी। उसे देखकर अर्चकों को महान् भय हुआ।

मूर्ति के समाचार सुनकर चोलराज भी वहाँ उपस्थित हो गये। भगवान् के ललाट से गिरती हुई रक्त की बूँदों को देखकर उन्हें भी भय और आश्चर्य हुआ। वे उसके कारण पर विचार करने के लिए विद्वानों की सभा बुलायी; परन्तु विद्वानों से इसका कारण का पता लगाना सम्भव नहीं हुआ; क्योंकि मन, वाणी से अतीत भगवान् रङ्गनाथ की लीला को समझना देवताओं और ऋषियों के लिए भी दुर्लभ है। अत एव श्रीयामुनाचार्य स्वामी ने कहा है— ***'नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये'*** जो अपने जीवन का आधार भगवान् को ही मानते हैं। वैसे प्रपन्न-ज्ञानी भक्त के शरीर को भगवान् अपना शरीर मानते हैं। वैसे भक्त के शरीर पर चोट लगने से भगवान् को चोट लगती है। अतः श्रीरङ्गपुरी के श्रीवैष्णवों ने श्रीपाणसूरि के शरीर पर चोट पहुँचायी थी, उसी से भगवान् के ललाट से रक्त की बूँदें निकल रहीं थीं।

वात्सल्यगुणमयी माता श्रीलक्ष्मीजी श्रीपाण की दुर्दशा देखकर भगवान् से उनकी रक्षा के लिए प्रार्थना की। भगवान् श्रीरङ्गनाथ ने श्रीसारङ्गयोगी को स्वप्न दिया कि श्रीपाणसूरि मेरा महान् भक्त है। अतः उसे अपने कन्धे पर बैठाकर मेरी सन्निधि में ले आओ। श्रीसारङ्गयोगी की नींद खुली। वे स्वप्न पर विचार कर बहुत प्रसन्न हुए और अपने को बड़े भाग्यशाली समझकर सन्ध्यावन्दनादि कृत्यों से निवृत्त होकर निचुलापुरी में श्रीपाणसूरि के पास पहुँच गये। उन्होंने श्रीपाणसूरि से श्रीरङ्गनाथजी की आज्ञा सुनाकर श्रीरङ्गम् चलने के लिए प्रार्थना की। श्रीसारङ्गयोगी की प्रार्थना सुनकर श्रीपाणसूरि ने कहा कि मैं नीच कुल में जन्म लिया हूँ, इसलिए अपने पैरों से श्रीरङ्गम् की भूमि को स्पर्श कर पवित्रता नष्ट क्यों करूँ? श्रीसारङ्गयोगी ने श्रीपाणजी की बात सुनकर कहा कि आप महाभागवत होकर ऐसा क्यों कह रहें हैं? आपको भगवान् की आज्ञा का पालन करना चाहिए। अतः आप भगवान् की आज्ञा के अनुसार मेरे कन्धों पर चढ़कर श्रीरङ्गम् पधारने की कृपा करें। भगवान् की आज्ञा समझकर श्रीपाणसूरि अपने में नीचता का अनुभव करते हुए श्रीसारङ्गयोगी के कन्धों पर चढ़ गये। श्रीयोगीजी उन्हें गरुड़ की भाँति श्रीरङ्गनाथ भगवान् के मण्डप में पहुँचा दिये। श्रीसारंग योगी श्रीपाणसूरि के वाहन बन गये। इसीलिए उसी दिन से श्रीपाणसूरि मुनिवाहन और योगीवाहन नाम से प्रसिद्ध हुए। जिस समय श्रीसूरिजी श्रीरङ्गम् पहुँचे उस समय भगवान् की आज्ञा से वैदिक ब्राह्मण सामवेद का पाठ कर रहे थे। उससे भगवान् को महान् आनन्द मिल रहा था।

श्रीपाणसूरि भगवान् के विमान की प्रदक्षिणा कर उनकी सन्निधि में पहुँच गये। श्रीसूरिजी को देखकर आनन्द स्वरूप श्रीभगवान् परमानन्दमय हो गये। भगवान् ने श्रीसूरिजी को अपने अलौकिक सौन्दर्यमय स्वरूप का दर्शन कराया। श्रीपाणसूरि भगवान् के अप्राकृत सौन्दर्य को निर्निमेष पलकों से दर्शन करने के बाद अपनी दृष्टि उनके चरण-कमलों में उसी प्रकार स्थिर कर लिए जैसे स्तन पान करने वाला शिशु की दृष्टि माता के स्तन में समाहित हो जाती है। भगवान् के दिव्य सौन्दर्य सुधारस का पान करने वाले श्रीसूरि ने श्रीद्रविड़ भाषा में एक दिव्य प्रबन्ध की रचना की जिसमें भगवान् श्रीरङ्गनाथ और भगवान् श्रीवेङ्कटेश की प्रार्थना है।

श्रीमुनिवाहनसूरि प्रबन्ध लिखकर भगवान् के चरणों में समर्पित कर देने के बाद हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये। भगवान् रङ्गनाथ सबों के सामने ही श्रीमुनिवाहनसूरि के शरीर को अपने में मिला लिए। अत: आज भी भगवान् श्रीरङ्गनाथजी की सन्निधि में मुनिवाहनसूरि की मूर्ति का दर्शन हेता है। इस मुनिवाहन स्वामी के चरित्र-प्रसङ्ग से गीता तथा श्रीमद्भागवत आदि के वचन स्मरण पथ में आ जाते हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।
(गी०-९।३२)

अर्थात् दीनहीन अकिञ्चन बनकर शुद्ध निर्मल भाव से भगवान् की शरण में कोई भी व्यक्ति आ जाता है वह भगवान् का अत्यन्त प्रिय बन जाता है। उसमें जाति आश्रम आदि के निमित्त उच्च-नीच का भेद भाव नहीं रहता है। स्त्री, वैश्य और शूद्र भी भगवान् के उसी प्रकार प्रिय हैं जैसे भगवान् के चरणों में प्रेम रखने वाला ब्राह्मण या संन्यासी प्रिय होते हैं। भागवत ७।९।१० में कहा गया है—

धन, कुल, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग–इन बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् पद्मनाभ के चरण-कमलों से विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया है। वह चाण्डाल अपने कुल को पवित्र कर देता है; परन्तु बड़प्पन का अभिमान रखने वाला ब्राह्मण भी पवित्र नहीं कर सकता। जो मुनिवाहनसूरि के चरित्र को सुनता एवं पढ़ता है उसे भगवान् की अविरल भक्ति प्राप्त होती है।

—oooo—

पृ0 26 का शेषभाग

गृहारम्भमुहूर्त्त

1. अगहन-शुक्ल-सप्तमी-गुरुवार 1-12-2011 को दिन में 11:49 से 1:19 तक कुम्भ लग्न
2. अगहन-शुक्ल-पूर्णिमा-शनिवार 10-12-2011 को 7:17 से 9 बजे तक
3. फाल्गुन-शुक्ल-द्वादशी-सोमवार 5-3-2012 को मिथुन लग्न = 11:41 से 1:54 तक दिन में ।

जीर्णादिगृहप्रवेशमुहूर्त्त

1. कार्त्तिक शुक्ल सप्तमी बुधवार 02-11-2011को प्रातः 7:37 से 9:53 तक ।
2. कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी सोमवार 07-11-2011 को प्रातः 7:18 से 9:34 तक।
3. अगहन कृष्ण एकादशी सोमवार 21-11-2011 को प्रातः 6.23 से 8:38 तक, पुनः 8:39 से 11.44 तक।
4. अगहन शुक्ल सप्तमी गुरुवार 01-12-2011 को प्रातः 7:56 से 10:1 तक।
5. अगहन शुक्ल दशमी सोमवार 05-12-2011 को प्रातः 5:23 से 7:38 तक, पुनः 7:39 से 9:44तक।

श्रीशठकोपसूरि एवं मधुरकवि-आलवार

वृषभे तु विशाखायां कारुकापुरि कारिजम् ।
पाण्ड्यदेशे कलेरादौ शठारिं तमुपास्महे ।।

दक्षिण भारत के पाण्ड्य देश में एक कुरुका नाम की नगरी थी। जो ताम्रपर्णी नदी के किनारे पर बसी हुई है। द्वापर में कौरवों ने वहाँ रहकर राज्य किया था। अत एव वह नगरी कुरुका नाम से प्रसिद्ध हुई। जिसे अभी आलवार तिरुनगरी कहते हैं। वहाँ एक उत्तम गुण सम्पन्न भगवद्भक्त श्रीकारि नाम के राजा हुए। जिनकी अलौकिक प्रतिभा थी। वे अपनी सेवा से माता-पिता को सदा आनन्द प्रदान करते थे। अवस्था के अनुसार एक श्रीवैष्णव की कन्या नाथनायिका के साथ उनका विवाह हुआ। वे एक बार नाथनायिका के साथ श्वसुर गृह से लौट रहे थे। मार्ग में एक मन्दिर का दर्शन हुआ। उसमें श्रीकुरङ्गेश भगवान् का दिव्य विग्रह था। राजा कारि की पत्नी नाथनायिका ने अपरिमित सौन्दर्यमय श्रीकुरङ्गेश भगवान् का दर्शन कर पुत्र की कामना से उनकी प्रार्थना की। प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् ने पुत्र के लिए उन्हें अभीष्ट वर प्रदान किया। नाथनायिका अपने पति के साथ अभीष्ट वर से प्रसन्न होकर घर लौट आयी। भगवान् कुरङ्गेश ने श्रीविष्वक्सेनजी को आज्ञा दी कि तुम नाथनायिका के गर्भ से जन्म लेकर उनका मनोरथ पूर्ण करो। श्रीनाथमायिका गर्भवती हुई, कलियुग के आदि में प्रमादि संवत् के वैशाखमास शुक्लपक्ष त्रयोदशी शुक्रवार विशाखा नक्षत्र तथा कर्क लग्न में भगवान् कुरङ्गेश के वरदान स्वरूप नाथनायिका के गर्भ से एक बालक का प्रदुर्भाव हुआ। जो शठकोप नाम से प्रसिद्ध हुए। गर्भावस्था में सभी बालक का शुद्ध भाव रहता है। जन्म लेने के बाद शठ नाम का वायु उनमें प्रवेश कर जाता है। जिसके कारण मायिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। शठकोपसूरि का भूमि पर पदार्पण होते ही शठ नामक वायु उनमें प्रवेश करना चाहा; परन्तु शठकोपसूरि ने उसे हुँकार मात्र से हटा दिया। उनमें शठ वायु का प्रवेश नहीं हुआ। इसलिए शठकोप कहे गये, कारि के पुत्र के होने से कारिसूनु कहलाये। वे प्रह्लाद की भाँति माता के गर्भ में ही समस्त तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर लिये थे। अवतरित होकर शठकोप-सूरि ने कलि के पापों को देखकर अपनी आँखें बन्द कर ली और उसने भूख-प्यास आदि सांसारिक विकारों से रहित होकर भगवान् के चरणों में ध्यान लगा लिया। पुत्र की यह दशा देखकर माता-पिता को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वे अतिशय ज्ञान, बल, वीर्य आदि से सम्पन्न तथा नवीन मेघ के समान कमनीय कान्ति वाले पुत्र को भगवान् विष्णु की सन्निधि में ले गये। वहाँ श्रीशठकोपसूरि को घास, शीत आदि से रक्षा के लिए भगवदाज्ञा से श्रीशेषजी इमली वृक्ष के रूप में अवतरित हुए थे। श्रीकारिजी नाथनायिका के साथ अपने बालक शठकोपसूरि को उसी इमलीं के खोड़हर में रख दिए। वाणी विहीन नेत्र बन्द किये हुए पुत्र का प्रभाव ज्ञात न हो सकने के कारण माता-पिता पुत्र का मोह त्याग कर घर चले आये। श्रीशठकोपसूरि अनवरत भगवान् का ध्यान करते हुए जन्म से सोलह वर्ष तक इमली वृक्ष के खोड़हर में ही सानन्द जीवन व्यतीत किये।

—०००—

श्रीमधुर कवि का प्रादुर्भाव

चैत्रे चित्रासुनक्षत्रे कालग्रामे शुभाह्वये।
कुमुदांशं समुद्भूतं मधुरं कविमाश्रये।।

कुरुका नगरी से एक कोस की दूरी पर पाण्ड्य मण्डल में सस्यश्यामल कोलू नाम का स्थान है। जहाँ पर श्रीलक्ष्मी सहित भगवान् विष्णु शेषशय्या

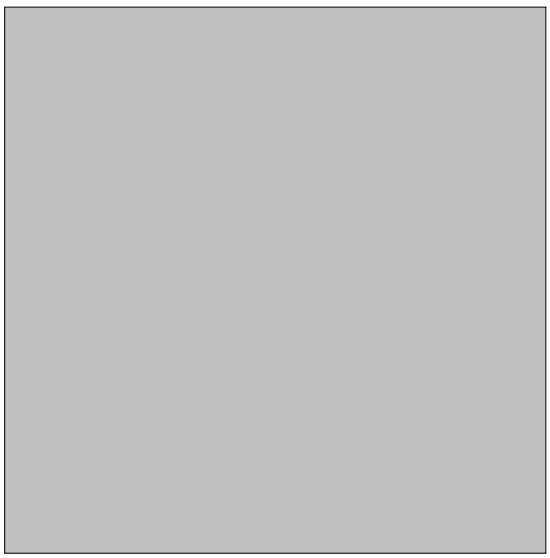

पर सोये हैं। वहाँ सामवेद के अध्ययन करने वाले महान् भगवद्भक्त पूर्वशिखा नाम के एक विद्वान् रहते थे। उनके घर चैत्रमास शुक्लपक्ष चित्रा नक्षत्र में एक बालक का जन्म हुआ। जो मधुर कवि नाम से प्रसिद्ध हुए। श्रीशठकोपसूरि से पूर्व ही श्री मधुर कवि का प्रादुर्भाव हो गया था। उनके पिता ने जन्म से जातकर्मादि सब संस्कारों को समयानुसार सम्पन्न कराते गये। श्रीमधुरकवि ने यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न होने के बाद श्रीगुरुमुख से चौदहों विद्याओं का कुछ काल में ही अध्ययन कर लिया।

तदनन्तर मधुरकवि को सांसारिक विषय भोगों से वैराग्य हो गया। उन्होंने समस्त दिव्य-देशों में भगवद्दर्शन के लिए यात्र की। उस क्रम में वे काञ्ची, जगन्नाथपुरी, उच्चैन, हरिद्वार, मथुरा आदि दिव्य देशों में भगवान् के श्रीविग्रह के दर्शन करते हुए अयोध्या में पहुँचे। वहाँ श्रीजनकनन्दिनी के साथ भगवान् राघवेन्द्र का मङ्गलाशासन करके कुछ काल तक निवास करने लगे। एक दिन रात्रि में जब मधुर कवि लघुशङ्का के लिए निकले तब उनकी दृष्टि दक्षिण दिशा की ओर गई। उन्होंने दक्षिण से उत्तर की ओर आते हुए एक प्रकाश पुञ्ज को देखा। उसे देखकर श्रीमधुर कवि को यह आशङ्का हुई की क्या कोई नगर जल रहा है जिसका अत्यधिक प्रकाश यहाँ आ रहा है। जब पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि कहीं भी आग नहीं लगी है। दिन में प्रकाश नहीं मिलता था। रात्रि में ही उसका दर्शन होता था। कतिपय रात्रियों में जब उन्हें प्रकाश दिखाई पड़ा, तब वे समझ गये कि यह अलौकिक प्रकाश है, जो यहाँ तक आ रहा है। तब वे प्रकाश की ओर चल दिये। दिनभर चलकर सन्ध्या होते ही किसी गाँव में ठहर गये। उस रात्रि में भी बाहर निकलकर देखे तो दक्षिण से आते हुए प्रकाश पुञ्ज पर दृष्टि पड़ी। पुनः दक्षिण की ओर चले। दिनभर चलकर रात्रि में विश्राम कर लेते थे। ऐसे बहुत दिनों तक वे चलते रहे। जहाँ भी रात्रि में ठहर जाएँ वहाँ से दक्षिण की ओर दृष्टि फैलाकर प्रकाश देखते जाएँ। अब वे कुरुकापुरी पहुँच गये तब वहाँ रात्रि में दक्षिण दिशा से आने वाला प्रकाश नहीं दिखाई पड़ा। मधुर कवि विचार करने लगे यहाँ से उत्तर जब तक रहे तब तक प्रकाश मिलता गया और यहाँ आने पर प्रकाश मिलना

बन्द हो गया। इससे ज्ञात हो रहा है कि यहीं के किसी स्थान से प्रकाश आता है। अत: वे घूम-घूमकर सभी स्थानों में पता लगाने लगे।

एक दिन घूमते हुए उन्हें इमली के खोड़रे में समाधिस्थ श्रीशठकोपसूरि पर दृष्टि पड़ी। श्रीमधुर कवि को विश्वास हो गया कि यहीं से प्रकाश निकलकर अयोध्या तक जा रहा है। श्रीशठकोपसूरि मौन हो आँख बन्द किये हुए थे। श्रीमधुरकवि को सन्देह हुआ कि यह व्यक्ति अन्धा और मूर्ख तो नहीं है। अत: श्रीसूरिजी की परीक्षणार्थ कवि ने उनके सामने एक बड़ा पत्थर का टूकड़ा पटक दिया। टुकड़े की आवाज से श्रीसूरिजी की आँखें खुल गयीं।

श्रीमधुरकविजी समझ गये कि श्रीसूरिजी भगवद् ध्यान में लीन थे; परन्तु मधुर कवि को अभी तक यह निर्णय नहीं हो पाया है कि यह बोलते हैं या नहीं। एतदर्थ श्रीकविजी ने श्रीशठकोपसूरि जी से पूछा कि जन्म लेने वाला प्राणी माँ के गर्भ में क्या खाता है? श्रीसूरिजी ने उत्तर दिया कि वह प्राकृत पदार्थों को ही अपना भक्ष्य बनाता है। श्रीमधुरकवि श्रीशठकोप स्वामी के वचन से बहुत प्रभावित हुए और उन्हें अपना आचार्य मानकर परम श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा में लग गए। उस समय जगन्माता श्रीलक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु अपने वाहन गरुड़ पर चढ़कर आये और श्रीशठकोपसूरि को अपने दिव्य विग्रह का दर्शन कराये। श्रीसूरिजी अनन्त कल्याण गुणनिधि भक्तवत्सल भगवान् का दर्शन कर आनन्द मग्न हो गये। भगवान् की इस भक्त-वत्सलता को देखकर श्रीशठकोपसूरि के हृदय में उत्पन्न आनन्द चारों वेदों के सार रूप चार दिव्य द्राविड प्रबन्धों के रूप में प्रस्फुटित हो गया।

ऋग्वेद के सार रूप में प्रस्फुटित प्रबन्ध का नाम 'श्रीवृत्त' पड़ा। इसमें सौ गाथाएँ हैं। यजुर्वेद के साररूप में निकले हुए प्रबन्धों को 'आशिर्वा' कहते हैं। इसमें सात गाथायें हैं। जगत् की रक्षा के लिए अथर्ववेद के साररूप में निकले हुए प्रबन्ध को 'महान्त' कहते हैं। इसमें ८७ गाथायें हैं। सम्पूर्ण संसार का पालन करने वाले भगवान् विष्णु के प्रियतम सामवेद के साररूप में प्रस्फुटित प्रबन्ध को 'सहस्त्रगीति' कहते हैं। इस दिव्य प्रबन्ध में बारह सौ गाथायें हैं।

श्रीशठकोपसूरि के द्वारा रचित दिव्य प्रबन्धों को श्रीमधुरकवि ने तालपत्र पर लिखकर सुरक्षित कर दिया था। यह दिव्य प्रबन्ध अध्यात्मरत्न से परिपूर्ण है। इसमें जीवात्मा का स्वरूप, परमात्मा का स्वरूप, माया का स्वरूप, परमात्मा को प्राप्त करने का साधन और फल स्वरूप का समुचित रूप में प्रतिपादन किया गया है। वेदान्त शास्त्र का प्रतिपाद्य विषयों की उपलब्धि दिव्य प्रबन्ध सहस्त्रगीति में होती है। भगवान् विष्णु के १०८ दिव्य देश हैं। उन सबका मङ्गलाशासन इस प्रबन्ध में किया गया है। सहस्त्रगीति में सब वर्ण के लोग भगवान् के चरणों में भक्ति-प्रपत्ति करके परमपद के अधिकारी बन सकते हैं ऐसा कहा गया है। अगस्त्य रचित द्राविड़ भाषा को विश्वकर्मा ने पैशाची भाषा कहा था।

श्रीशठकोप स्वामी द्वारा विरचित दिव्य प्रबन्ध सहस्त्रगीति की रचना के बाद द्राविड़ भाषा उत्तम भाषा बन गई। अत एव दिव्य प्रबन्ध द्रविडाम्नाय अर्थात् द्राविड़ वेद के रूप में माना जाने लगा। आज लोग द्राविड़ वेदान्त के रूप में दिव्य प्रबन्ध सहस्त्रगीति का अध्ययन करते हैं। जो संस्कृत भाषामय उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र और द्राविड़ वेदान्त दिव्य प्रबन्धों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वे उभय वेदान्ताचार्य कहे जाते हैं। श्रीश-ठकोपसूरि श्रीमधुर कवि को अपना शिष्य बनाकर चार दिव्य प्रबन्धों की रचना करते हुए इस लीला विभूति में ३५ वर्ष व्यतीत किये। श्रीशठकोप

स्वामी को वैकुण्ठ चले जाने पर उनके परम शिष्य श्रीमधुर कवि ने श्रीसूरिजी की विशाल अर्चाविग्रह बनवाकर उसी इमली वृक्ष की जड़ भाग में स्थापित किया, जहाँ श्रीसूरिजी सोलह वर्ष तक पद्मासन से बैठकर भगवद् ध्यान में मग्न रहे थे। श्रीमधुर कवि ने सहस्रगीति को जो श्रीवैष्णवों के लिए परम उपादेय है उसे विशेष प्रचार-प्रसार किया।

श्रीशठकोप सूरिजी दिव्य वकुल माला को धारण करने से वकुलाभरण, वकुलभूषण आदि नामों से तथा दूषित बुद्धिवालों को सन्मार्ग पर लाने के कारण पराङ्कुश नाम से प्रसिद्ध हुए।

वे कामादि शत्रुओं से दूर रहने के कारण मारन कहे गये हैं। उन्हें आचार्यों ने आलवारों में प्रधान माना है। समस्त दिव्य देशों में भगवान् की पादुका श्रीशठकोप नाम से ही कही जाती है। जैसे शठ नाम के वायु को हटा देने वाले शठकोप स्वामी थे, उसी प्रकार भगवान् की चरण पादुका शिर पर धारण करने से मानव शठ वायु का शिकारी नहीं बनता है। अत: उसे शठारि कहते हैं।

****

निचुलानायिका का प्रादुर्भाव एवं विवाह

श्रीरङ्गम् से एक कोस की दूरी पर काबेरी के दक्षिण तट पर एक निचुला नाम की नगरी थी। वहाँ धर्मवर्मा नाम से प्रसिद्ध एक क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। उन्हें भगवान् रङ्गनाथ में विशेष भक्ति थी। वे प्रतिदिन भगवान् के चरणकमलों का दर्शन कर उनके विभिन्न प्रकार के कैङ्कर्यों को करते रहते थे। राजा धर्मवर्मा भागवत थे।

अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः।
आकारत्रयसम्पन्नास्ते वै भागवताःस्मृताः।।

निचुलानगरी के तालाब में कमल के पुष्प से एक कन्या उत्पन्न हुई। जिसे धर्मवर्मा अपनी पुत्री के रूप में पालन-पोषण करने लगे। राजा ने उसका नाम निचुलानायिका रखा। वह भी भगवान् रङ्गनाथ के चरणों में समर्पित रहती थी। उसके खेल का विषय भी रङ्गनाथजी थे। वह अपनी सखियों के साथ उनकी लीला का खेल खेलती थी। जब वह युवती हो गयी तो श्रीरङ्गनाथ भगवान् को पतिरूप में प्राप्त करने की कामना करने लगी। राजा धर्मवर्मा अपनी पुत्री निचुलानायिका के विवाहार्थ चिन्ता करने लगे। निचुलानायिका ने अपना मनोभाव व्यक्त किया कि मैं रङ्गनाथ भगवान् के साथ विवाह करूँगी। राजा धर्मवर्मा उसके विवाह की तैयारी में लग गये।

विवाह के दिन तैंतीस करोड़ देवताओं के साथ रङ्गनाथ भगवान् ने मण्डप में आकर निचुला देवी का पाणिग्रहण कर लिया। तदनन्तर भगवान् रङ्गनाथ के साथ निचुलादेवी श्रीरङ्गम् चली गयी।

श्रीपरकालसूरि—आलवार (श्रीनीलम्)

वृश्चिके कृतिकाजातं चतुष्कविशिखामणिम् ।
षट्प्रबन्धकृतं शार्ङ्गमूर्तिं कलिघ्नमाश्रये ।।

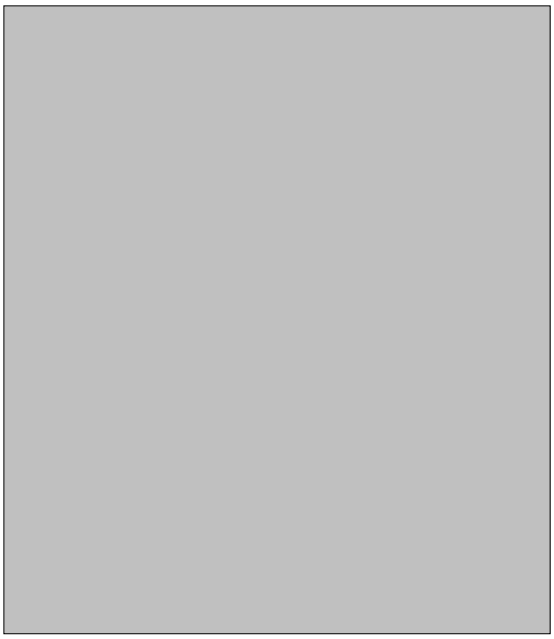

पूर्वी समुद्र के पश्चिमी तट पर कावेरी नदी के किनारे चोल देश में परिरम्भ नाम की एक नगरी है। वहाँ महालक्ष्मी जी के तपस्या से प्रसन्न हो भगवान् ने उन्हें गाढ़ आलिङ्गन किया था, इसलिए उसका नाम परिरम्भपुरी हुआ। उस परिरम्भपुरी और कमलापुरी नगरी के बीच में एक अन्यून नाम की नगरी है। जो सभी प्रकार के धन धान्यों से परिपूर्ण होने के कारण वह अन्यून नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ अविनाडुदयार नाम के महान् पराक्रमी एक धार्मिक शूद्र राजा राज्य करते थे। उनके घर कलि के २०७ वर्ष बीत जाने पर नल संवत् कार्तिकमास पूर्णिमातिथि गुरुवार कृतिका नक्षत्र में भगवान् के सारङ्गधनुष के अंश से एक बालक का प्रादुर्भाव हुआ। उसके शरीर का वर्ण नील था, अतः उस बालक का नाम नीलम् पड़ा। वे ही आगे श्रीपरकालसूरि नाम से प्रसिद्ध हुये। जन्मकाल में उस बालक के ऊपर भगवान् नारायण की कृपा कटाक्ष हुआ। अतः उसमें भगवान् और भक्तों के प्रति प्रेमभाव जागृत हुआ।

नीलम् अल्प अवस्था में ही शास्त्र और शस्त्र दोनों विद्याओं में प्रवीण हो गए। उन्हें राज्य सेवा में विशेष अभिरुची रहती थी। अतः राजा अविनाडुदयार ने राज्य के एक प्रदेश पर प्रशासन का भार उन्हें सौंप दिया। नागपुर से एक कोस की दूरी पर एक तालाब था, जिसके किनारे पर भगवान् विष्णु का एक मन्दिर था। वह तालाब कमलों से सुशोभित तथा निर्मल जल से परिपूर्ण था। वहाँ प्रतिदिन स्वर्ग से अप्सरायें स्नान एवं जल-क्रीड़ा के लिये आया करती थीं और स्नान के बाद लौट जाती थीं। एक दिन सभी अप्सरायें स्नान के बाद पुष्प चुन रहीं थीं, उनमें एक अप्सरा को किसी कारण वश छोड़कर सभी अप्सरायें स्वर्ग चलीं गयीं। सबों से परित्यक्ता अप्सरा अपने देव शरीर को त्यागकर सुन्दर मानवी शरीर धारण कर ली। तदनन्तर वह अनाथ बालिका के समान उसी तीर पर इधर-उधर विचरण करने लगी। उसी समय नागपुर के एक अच्छे वैद्य अचानक कहीं से वहाँ आ गये। उसने अकेली घूमती हुई बालिका को देखकर उसने वात्सल्य भरे वचनों में पूछा—पुत्रि! तुम अकेली क्यों घूम रही हो और यहाँ कैसे आ गई? उनकी यह ममता भरी वाणी सुनकर बालिका ने कहा कि मेरे साथ आयी हुई सभी बालिकायें मुझे यहीं छोड़कर चलीं गईं, अब मैं अकेली और अनाथ हूँ।

यदि आप मुझे अपने घर ले चलें तो मैं आपके साथ चल सकती हूँ। श्रीवैद्यजी ने कहा—यदि तुम मेरे घर चलो तो मैं तुम्हारा पालन-पोषण अपनी पुत्री के समान करूँगा।

तत्पश्चात् सन्तान विहीन होने के कारण वैद्यराज उस बालिका को लाकर अपनी पत्नी के हाथों सौंप दिया। वह अपनी पुत्री के समान उसे पालन करने लगी। श्रीवैद्यजी ने उस बालिका का नाम कुमुदवल्ली रखा। अपरिमित सौन्दर्य सम्पन्न कुमुदवल्ली प्रतिदिन बढ़ने लगी। वैद्यराज अपनी पुत्री की यौवनावस्था को देखकर उसे अच्छे वर के साथ पाणिग्रहण संस्कार के लिए विचार करने लगे। जैसे सीता के विवाह के लिए राजा जनक को चिन्ता हुई थी वैसे ही कुमुदवल्ली के विवाह के लिए वैद्यराज को चिन्ता होने लगी।

श्रीनिलम् और कुमुदवल्ली का विवाह

श्रीनीलम् जी के पास उनका एक विश्वासी दूत ने आकर कुमुदवल्ली के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन किया। वे दूत से कुमुदवल्ली की प्रशंसा सुनकर अपने राज्य के आवश्यक कार्यों का भार विभिन्न लोगों को सौंपकर नागपुर के लिए प्रस्थित हो गये। वहाँ वैद्यराज के अतिथि बनकर कुमुदवल्ली के सौन्दर्य को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वैद्य से वार्तालाप करते हुए श्रीनीलम् जी ने पूछा—आप तो सन्तानहीन थे, फिर यह युवती कन्या आपके घर में कहाँ से और कैसे आ गयी? श्रीवैद्यजी ने राजा नीलम् से कुमुदवल्ली की प्राप्ति सम्बन्धी सारी कहानी सुना दी। श्रीनीलम् जी कुमुदवल्ली के वरण के लिए सुन्दर आभूषण श्रीवैद्यराज को देने लगे। उन्होंने कहा कि इसके सम्बन्ध में पुत्री कुमुदवल्ली से विचार करेंगे। श्रीवैद्यराज ने अपनी पुत्री से पूछा। कुमुदवल्ली ने कहा कि मैं अवैष्णव से विवाह नहीं करूँगी। जो तप्त शङ्ख, चक्र, ऊर्ध्व-पुण्ड्रलितक, भगवन्नाम, मूल, द्वय एवं चरममन्त्र और आत्मसमर्पण रूप योग इन पञ्च संस्कारों से संस्कृत हो भगवान् विष्णु के चरणों में प्रेम करते हों उन्हीं से मैं विवाह करूँगी।

तापः पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः ।
अमी ते पञ्चसंस्काराः पारमैकान्त्यहेतवः ।।
एवमुक्तप्रकारेण पञ्चसंस्कारसंस्कृतम् ।
श्रीवैष्णवं विनान्यं ते न वृणेऽहं कदाचन ।।

राजानीलम् कुमुदवल्ली की प्रतिज्ञा सुनकर श्रीनिवास स्थल आये और वहाँ के महात्मा श्रीपूर्ण-हरिजी से उन्होंने वैष्णवी दीक्षा ली। तदनन्तर वे ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक लगाकर कुमुदवल्ली के पास गये। उन्हें देखकर कुमुदवल्ली ने उनसे कहा कि यदि आप एक वर्ष तक प्रतिदिन १००८ श्रीवैष्णवों का श्रीपादतीर्थ लेकर उन्हें भोजन दक्षिणा तथा ताम्बूल से सन्तुष्ट किया करें, तो मैं आपकी पत्नी हो जाऊँगी, अन्यथा आपसे विवाह नहीं करूँगी। श्रीनीलम् जी ने इस शर्त को भी स्वीकार करके उसका पाणि-ग्रहण किया। कुमुदवल्ली से की गई प्रतिज्ञा के अनुसार श्रीनीलम् जी प्रतिदिन १००८ श्रीवैष्णवों का तीर्थपाद लेकर उन्हें भोजन दक्षिणा ताम्बूल आदि से सन्तुष्ट करने लगे। श्रीनीलम् जी श्रीवैष्णवों के उच्छिष्ट प्रसाद को ही ग्रहण करते थे।

१००८ श्रीवैष्णवों के तदीयाराधन करने से श्रीनीलम् का सुशय सर्वत्र फैल गया।

श्रीनीलम् और चोल राजा का युद्ध

चोल देश का राजा अविनाडुदयार को यह ज्ञात हुआ कि श्रीनीलम् सम्पूर्ण राज्य के धन को श्री-वैष्णवों की सेवा में व्यय कर रहा है। अतः उसने श्रीनीलम् के पास अपने दूतों को भेजकर सूचित किया कि वह सारे धन को लौटा दें। जिस समय दूत श्रीनिलम् के पास आये उस समय वे श्रीवैष्णवों की सेवा में लगे हुए थे। अतः उन्होंने खजाना लौटाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, आये हुए दूत चार दिनों तक रह गये; परन्तु

श्रीनीलम् ने खजाना नहीं लौटाया। तदनन्तर राजदूतों ने कड़ाई के साथ खजाना की माँग की। श्रीनीलम् ने उन्हें फटकारते हुए कहा कि तुमलोग जाओ खजाना नहीं दूँगा। राजदूतों ने लौटकर सब समाचार राजा से सुना दिया।

उससे राजा असन्तुष्ट होकर श्रीनीलम् को पकड़ कर लाने के लिए छः हजार दूतों को भेजा। उस समय श्रीनीलम् अपने अवतार स्थल से एक कोस की दूरी पर कुमुदवल्ली के साथ उत्तम भोजन आदि से श्रीवैष्णवों की सेवा कर रहे थे। राजा के दूत श्रीनीलम् को पकड़ने के लिए वैसे ही प्रयास करने लगे, जैसे भक्त हनुमान को पकड़ने के लिए राक्षसराज रावण के दूतों ने किया था। राजदूतों की धृष्टता देखकर श्रीनीलम् क्रोधपूर्वक हाथ में तलवार लेकर सबों के साथ लड़ने के लिए युद्ध स्थल में उपस्थित हो गए। उस समय नीलम् का स्वरूप वैसे ही देखने में लगता था जैसे मतवाले हाथियों को वीदीर्ण करने के लिए महान् पराक्रमी सिंह पहुँच गया हो।

श्रीनीलम् ने राजदूतों को मार भगाया, तदनन्तर राजा ने नीलम् को पकड़ने के लिए सात बार अपनी विशाल सेना को भेजा; परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। उससे आश्चर्यचकित होकर राजा स्वयं युद्ध-स्थल में जाना चाहते थे; परन्तु उनका एक सेनापति श्रीधर उन्हें रोककर स्वयं विशाल सेना लेकर आधी रात के समय श्रीनीलम् से लड़ने के लिए कमलानगर पहुँच गया। उस समय श्रीनीलम् जी अपनी पत्नी के साथ श्रीवैष्णवों की सेवा में व्यस्त थे। जब नीलम् ने यह सुना कि राजा का सेनापति श्रीधर सेना लेकर युद्धस्थल में उपस्थित हो गया। तब वे घोड़े पर चढ़कर और हाथ में तलवार लेकर युद्ध-स्थल पर पहुँच गये। वहाँ राजा की सेना के साथ युद्ध होने लगा। उस समय समस्त श्रीवैष्णववृन्द विजय की कामना से श्रीनीलम् को आशीर्वाद देते हुए उनकी रक्षा के लिए नारायण कवच का पाठ करने लगे। उस समय अपने पति के कल्याणार्थ कुमुदवल्ली भी रक्षा स्तोत्र का पाठ कर रही थी। श्रीनीलम् ने कुछ काल में ही राजा की सेना को धराशायी कर दिया। श्रीनीलम् की विजय हुई यह जानकर देवताओं तथा श्रीवैष्णवों के साथ कुमुदवल्ली ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। चोल राजा को इससे गहरी चोट पहुँची। अतः वे स्वयं चतुरङ्गिणी सेना लेकर युद्ध प्राङ्गण में आ गये। उस समय श्रीवैष्णवों की सेवा में व्यस्त रहते हुए भी श्रीनीलम् जी राजा के साथ लड़ने के लिए युद्ध-भूमि में उपस्थित होकर समस्त सेनाओं को नष्ट कर दिये (विपक्षियों के लिए काल के समान होने के कारण श्रीनीलम् परकाल नाम से प्रसिद्ध हुए)। अन्त में व्याकुल होकर राजा ने मैदान छोड़ते समय श्रीनीलम् जी से कहा कि आप धर्म के रक्षक हैं, अतः धर्मानुसार आपको मेरा धन लौटा देना चाहिए। किन्तु धन श्रीवैष्णवों की सेवा में लग गया है, वह कैसे लौटाया जाए ऐसी चिन्ता परकालसूरि को हुई। भक्त की चिन्ता से भगवान् चिन्तित हो जाते हैं। श्रीपरकालसूरि खजाना का धन श्रीवैष्णवों की सेवा में लगा दिये थे। श्रीवैष्णव भगवान् के शरीर हैं। अतः वैष्णव की सेवा भगवान् की सेवा होती है। एतदर्थ भगवान् विचार किये कि मेरे सेवा में व्यय हुए धन को परकाल राष्ट्र की सेवा के लिए लौटा देना चाहता है तो मैं उसे धन दे दूँ यह विचार कर काञ्ची के वरदराज भगवान् ने स्वप्न दिया कि तुम काञ्ची आओ, मैं तुमको अपरिमित धन दूँगा। भगवान् की बातों को अक्षरसः सत्य मानकर श्रीसूरिजी चोल राजा के मन्त्रियों को सूचित किये कि यदि आपलोप काञ्ची चलें तो मैं सारा खजाना लौटा दूँगा। वहाँ मैंने अपने धन का विशेष भाग धरती में गाड़ दिया हूँ।

श्रीपरकालसूरि के साथ राजा के कुछ मन्त्री काञ्ची आये और वेगवती के किनारे पर धन खोजने

लगे; परन्तु वहाँ धन नहीं मिला। श्रीपरकालसूरि निराश हो गये। रात्रि में भगवान् वरदराज ने पुन: स्वप्न में धन का स्थान बतला दिया। प्रात: काल श्रीपरकालसूरि राज मन्त्रियों के साथ भगवान् के द्वारा स्वप्न में निर्दिष्ट स्थान पर गये। वहाँ यथेष्ट धन प्राप्त हो गया। राजा के खजाना में जितना धन देना था। श्रीपरकालजी उतना देकर शेष धन अपने घर कुमुदवल्ली के पास ले आये।

श्रीपरकाल सूरि को जैसे धन प्राप्त हुआ उसकी पूरी कथा मन्त्रीगण अपने राजा को सुना दिये। राजा ने मन ही मन विचार किया कि श्रीपरकालजी साधारण पुरुष नहीं हैं। जिस तरह आपत्ति पड़ने पर भगवान् श्रीकृष्ण द्रौपदी की रक्षा के लिए वस्त्र बढ़ा दिये थे, उसी प्रकार आज वरदराज भगवान् ने परकालजी को धन प्रदान करके उनके धर्म की रक्षा की है। राजा ने यह भी विचार किया कि जैसे द्रौपदी के अपमान के कारण कौरवों का सर्वनाश हो गया था, वैसे ही श्रीपरकालजी के अपमान के कारण मेरा भी सर्वनाश हो सकता है। अत: राजा ने श्रीपरकालसूरि को बुलाकर सम्मान के साथ धन लौटाकर क्षमा याचना की।

श्रीवैष्णव सेवार्थ द्रव्यापहरण

श्रीपरकालसूरि चोल राजा के द्वारा लौटाये गये धन को श्रीवैष्णवों की सेवा में व्यय कर दिये। तदनन्तर 'प्रतिदिन १००८ श्रीवैष्वणों को भोजनादि से सन्तुष्ट करके ही अन्न ग्रहण करूँगा' ऐसा सङ्कल्प करने वाले श्रीपरकाल स्वामी ने विचार किया कि धन का अभाव हो गया है। सङ्कल्प के अनुसार १००८ श्रीवैष्णवों का भोजन कैसे और कहाँ से होगा। एतदर्थ पवित्र भाव से चोरी-लूट आदि से धन संग्रह कर वैष्णवों की सेवा करने लगे। चोरी-लूट कर्म में सहयोग के लिए अतिप्रिय छ: श्रीवैष्णवों को साथ रखने लगे। सहयोगी शिष्यों में विभिन्न प्रकार के गुण थे। किसी में आसानी से अगाध जल में पार कर जाने की शक्ति थी, कोई छाया में लीन हो जाने की विद्या जानता था, कोई वृक्ष पर चढ़ जाने में दक्ष था, किसी में आसानी से विजय प्राप्त कर लेने की क्षमता थी और कोई फूँककर किवाड़ खोल देता था। श्रीपरकाल स्वामी अपने छ: सहयोगियों को साथ लेकर मार्ग में जाने वाले यात्रियों का धन लुटकर श्रीवैष्णवों की सेवा करते थे। उनका यह कर्म बन्धन कारक या पापपूर्ण नहीं था; क्योंकि वे शुद्ध भाव से भगवद्भक्ति की सेवा के लिए करते थे। वैयक्तिक स्वार्थ भाव से किये गये कर्म बन्धन कारक होते हैं। भगवद् वचन है— ***'सन्निमित्तं कृतं कर्म तद्धर्माय च कल्पते'*** अर्थात् भगवान् और उनके भक्त श्रीवैष्णवों के लिए किया गया कर्म धर्म स्वरूप होता है।

एक दिन श्रीपरकाल स्वामी सहयोगियों के साथ धन चुराने के लिए एक गाँव में गये, उस समय विशेष आँधी के साथ वर्षा हो रही थी, चारों ओर घनान्धकार छा गया था, अत: यात्रियों का आना-जाना बन्द हो गया था। उस सयम श्रीपरकाल स्वामी धन अपहरण की इच्छा से एक दरवाजे के बाहर खड़े थे। वहीं कोई स्त्री घर के भीतर सोने-चाँदी के पात्रों को साफ कर रही थी। उसे देखकर श्रीपरकालजी ने उससे पात्रों को छीन लिया। उन पात्रों को लेकर श्रीसूरिजी ज्यों ही आगे बढ़ना चाहे कि भीतर की नारी बोली— ***'अस्मद्गुरुभ्यो नमः'***। श्रीसूरिजी ने नारी को श्रीवैष्णवी समझकर सब पात्रों को छोड़ दिया। तदनन्तर नारी अपने सभी पात्रों को घर ले आयी और पति से सब वृत्तान्त सुना दी। उसके पति समझ गये कि वे अवश्य श्रीपरकाल-सूरि होंगे। अत: उसने अपनी पत्नी से कहा कि

तुम चुपचाप रह जाती तो मेरे ये धन श्रीवैष्णवों की सेवा में लग जाते, अब तो ये व्यर्थ हैं।

भगवान् रङ्गनाथ का प्रत्यक्ष दर्शन

एक बार द्रव्यापहरण के लिए श्रीसूरिजी जङ्गल में मार्ग रोककर बैठे हुए थे, दिन के तीन पहर बीत गये, कोई भी धनी पथिक नहीं आया। श्रीपरकाल स्वामी चिन्तित हुए कि अब श्रीवैष्णवों की सेवा कैसे होगी। उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा कि पेड़ के शिखर पर चढ़कर देखो कि किसी तरफ से कोई पथिक आ रहा है या नहीं; क्योंकि आज मेरे यहाँ श्रीवैष्णव भूखे रह जायेंगे।

श्रीपरकालसूरि की चिन्ता से भगवान् रङ्गनाथ चिन्तित हो गये। वे सोचे कि मैं ही आज पथिक बन जाता हूँ। एतदर्थ वे श्रीलक्ष्मी जी को सभी वस्त्र, भूषणादि से अलङ्कृत करके एक वधू के रूप में सोने की पालकी पर बैठाकर ले चले और स्वयं वर का वेष बनाकर घोड़े पर चढ़कर जिस मार्ग में धनी पथिक की आशा लगाये श्रीपरकालजी बैठे थे, उसी मार्ग से चल दिये। शिष्य ने उन्हें दूर से ही आते हुए देखकर बोला कि आचार्य देव! आज कोई ब्राह्मण विवाह कर नयी पत्नी को पालकी पर बैठाये और स्वयं घोड़े पर चढ़कर आ रहा है। वह विशेष धनी मालूम हो रहा है। अत: आप तैयार हो जायँ। शिष्य का वचन सुनकर श्रीसूरि जी बहुत प्रसन्न हुए और मार्ग रोककर धनापहरण के लिए तैयार हो गये। उन्होंने ब्राह्मण वेषधारी पथिक को आते ही कहा कि पालकी रोको और जो भी धन है उसे दे दो।

ब्राह्मण वेषधारी श्रीरङ्गनाथ जी ने पालकी रोककर सब धन श्रीलक्ष्मीजी से सूरिजी को दिला दिया। माता लक्ष्मीजी के पैरों में केवल एक सोने की अँगूठी बच गयी थी उसे निकालने के लिए बहुत प्रयास किये; परन्तु वह अङ्गूठी नहीं निकल सकी। श्रीसूरिजी ने सोचा कि इसे दाँतों से निकाल लूँ। श्रीरङ्गनाथजी सूरिजी के प्रयास को देखकर बोले कि सम्पूर्ण धन तो उतार ही लिया इस अङ्गूठी को क्यों नहीं छोड़ देते हो। श्रीपरकालसूरि जी ने कहा कि इस अङ्गूठी से श्रीवैष्णवों के लिए पत्तल खरीद लूँगा। तदनन्तर सूरिजी अपने दाँतों से अङ्गूठी निकाल कर सभी धनों को बाँध लिए। धन विशेष भारी होने के कारण शिष्य सहित सूरिजी से नहीं उठा सके। यह आश्चर्य देखकर श्रीपरकालजी ने तलवार उठाकर ब्राह्मण वेषधारी रङ्गनाथ को धमकाते हुए कहा कि तुमने मन्त्र से इसे भारी बना दिया है। यदि तुम मन्त्र को नहीं लौटा लोगे तो इसी तलवार से तुम्हें वध कर दूँगा। उनके वचन सुनकर पथिक वेष धारण किये हुए भगवान् सूरिजी से बोले कि आओ तुम मेरे सामने नम्र बनकर खड़े हो जाओ, मैं तुम्हें उस मन्त्र को ही बतला देता हूँ। श्रीसूरिजी विनम्र भाव से उनके सामने खड़े हो गये। भगवान् ने उनके कानों में वेदों, पुराणों और शास्त्रों के साररूप अपरिमित प्रभाव सम्पन्न ***'ॐ नमो नारायणाय'*** इस अष्टाक्षर मन्त्र का उपदेश दिया। तदनन्तर भगवान् रङ्गनाथ श्रीलक्ष्मी के साथ गरुड़ वाहन पर प्रकट होकर श्रीपरकालसूरि को दर्शन दिये। भगवान् के दर्शन से श्रीसूरिजी प्रेमविभोर होकर उनकी स्तुति करने लगे। जो स्तुति वचन चारों ओर छ: दिव्यद्रविड प्रबन्धों के रूप में प्रस्फुटित हुए। उसी से श्रीपरकालजी चतुष्कवि नाम से कहे जाते हैं। भगवान् रङ्गनाथ ने श्रीसूरिजी से कहा कि तुम वरदान माँग लो। श्रीसूरिजी ने कहा कि मेरी कामना पूर्ण हो गयी। अब आप यहाँ रहकर भक्तों पर कृपा करें।

तत्पश्चात् भगवान् ने श्रीसूरिजी को कहा कि अब तुम श्रीरङ्गम् चलो, वहाँ पाकशाला आदि के

कार्य अवशेष हैं उन्हें पूरा करना। तदनन्तर भगवान् अन्तर्धान हो गये। श्रीपरकाल स्वामी भगवान् के आदेशानुसार श्रीरङ्गम् पहुँचकर भगवत्कैङ्कर्य में लग गये। उन्होंने कुछ काल में ही भगवान् के सात चाहर दीवारियों, कूपों, मन्दिर के स्तम्भों एवं सिंहासनों का निर्माण कराया। वहाँ पर एक मण्डप का भी निर्माण कराकर श्रीपरकाल स्वामी भगवान् रङ्गनाथ के समक्ष हाथ जोड़कर प्रार्थना किये कि यदि मैं पहले चाहता तो आपका मन्दिर सोना का बना सकता था; परन्तु अब मैं असमर्थ हूँ। भगवान् ने उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए सभी मन्दिर आदि को स्वर्णमय बनाकर दिखा दिया। पुन: श्रीपरकालसूरि ने भगवान् के पास रहकर सात दिव्यप्रबन्धों की रचना की, जिनमें एक हजार तीन सौ चौंसठ गाथाएँ हैं। श्रीपरकालसूरि ने १०५ वर्षों तक भगवान् एवं भागवतों की सेवा करते हुए श्रीकुरङ्गपुर में आकर इस लोक के भगवत्कैङ्कर्य प्रधान शरीर को त्यागकर श्रीवैकुण्ठ के लिए महाप्रयाण किए।

श्रीपरकालसूरि के वैकुण्ठगमनान्तर

श्रीपरकालसूरि को वैकुण्ठ चले जाने पर उनकी प्रतिमायें घर-घर में स्थापित हुई। श्रीपरिम्भपुरी में उनका अर्चावतार विग्रह विराजमान है। आज भी श्रीरङ्गनाथजी के सभी उत्सवों के समय में प्रपन्न-महात्माओं का श्रीपरकालसूरि के दर्शन होते हैं। जिस घर में ढाल-तलवार धारण किये हुए श्रीपर-कालसूरि की प्रतिमा रहती है उस घर से कलि का कुप्रभाव समाप्त हो जाता है। श्रीपरकालसूरि की अर्चना करने वाले भगवत्प्रपन्न श्रेष्ठ माने जाते हैं। कार्तिक मास के कृत्तिका नक्षत्र में श्रीपरकालसूरि का उत्सव मनाया जाता है। उस अवसर पर जो लोग द्राविणाम्नायनिष्णात तत्त्वत्रय रहस्य तथा श्रीवैष्णवों को तदीयाराधन कराते हैं, वे इस लोक में मुक्ति के साधन ऐश्वर्यादि को प्राप्त करके अन्त में भगवान् श्रीविष्णु के नित्य वैकुण्ठ धाम में चले जाते हैं। कार्तिक मास के कृत्तिका नक्षत्र में श्रीपरकालसूरि के सभी द्राविड़ प्रबन्धों की समाप्ति हुई थी, अत: पूर्वाचार्यों ने निर्णय किया है कि श्रीवैष्णवों को कृत्तिका नक्षत्र से लेकर बीस दिन पर्यन्त श्रीपरकालसूरि का उत्सव मनाते हुए भगवान् विष्णु के ही मन्दिर में इन दिव्य प्रबन्धों का पाठ करना चाहिए, अन्यत्र नहीं। जिस प्रकार वेदाध्ययन का प्रारम्भ और समापन होता है उसी प्रकार द्राविणाम्नाय का भी प्रारम्भ और समापन का विधान है। श्रावणी या प्रोष्ठपदी से प्रारम्भ करके विधिवत् साढ़े पाँच महीनों तक वेदाध्ययन करके उसका समापन किया जाता है। द्राविणाम्नाय भी मकर राशि के सूर्य होने पर हस्त नक्षत्र में प्रारम्भ करके चार हजार गाथाओं का सविधि अध्ययन करते हुए उनका कार्त्तिकमास के कृत्तिका नक्षत्र में समापन करना चाहिए। यह भगवान् श्रीरङ्गनाथ ने अपने शठजित प्रभृति दिव्य-सूरियों को आदेश दिया था। प्रपन्नमहात्मओं को चाहिए कि वे धनुर्मास में श्रीगोदा देवी द्वारा विरचित प्रबन्धों का पाठ करें। श्रीगोदा देवी द्वारा रचित प्रबन्धों का अरुणोदय के पहले ही पाठ करना चाहिए; क्योंकि उसी बेला में श्रीगोदा देवी भगवान् की नित्य अर्चना करके उनको स्वविरचित गाथाओं का पाठ सुनाया करती थी। इन नियमों की अवहेलना करके अनध्यायकाल में भी दिव्य प्रबन्धों का पाठ करने वाला मानव नरकगामी होता है। अत: मानव को पूर्वाचार्यों द्वारा अनुगृहीत मार्ग को ही अपना कर अपने परमपद प्राप्ति के मार्ग को अपनाने की कोशिश करनी चाहिए अन्यथा स्खलन का भय रहता है।

—०००—

बारह आलवारों के संक्षिप्त परिचय

क्र.सं.	आलवारों के नाम	जन्म नक्षत्र	महीना	जन्मस्थान	अंश-श्रीमन्नारायण के आयुध, आभूषण, परिजन आदि का प्रतिरूप
१.	श्रीसरोयोगी	श्रवणा	आश्विन	कांचीपुरम् (मद्रास के पास)	पाञ्चजन्य नामक-शंख
२.	श्रीभूतयोगी	धनिष्ठा	आश्विन	महावलिपुरम् (मद्रास के पास)	कौमोदकी नामक-गदायुध
३.	श्रीमहद्योगी	शतभिषा	आश्विन	मइलापुर (मद्रास)	नन्दक-खड्ग
४.	श्रीभक्तिसार	मघा	पौष	तिरुमौली (मद्रास के पास)	सुदर्शन-चक्र
५.	श्रीशठकोप	विशाखा	वैशाख	आलवार तिरुनगरी (तिरुनेलवेलि जिला)	श्रीविष्वक्सेन
६.	श्रीमधुरकवि	चित्रा	चैत्र	तिरुक्कोलूर (तिरुनेलवेलि जिला)	कुमुद
७.	श्रीकुलशेखर	पुनर्वसु	माघ	केलिपट्टण (केरल राज्य)	कोस्तुभमणि
८.	श्रीविष्णुचित्त	स्वाती	ज्येष्ठ	धनवीपुर (कामराजर जिला)	श्रीगरुड़
९.	श्रीगोदाम्बा (आण्डाल)	पूर्वा-फाल्गुनी	आषाढ़	धन्वीपुर (कामराजर जिला)	भूदेवी
१०.	श्रीभक्तांघ्रिरेणु	ज्येष्ठा	मार्गशीर्ष	मण्डगुडि (तंजाऊर जिला)	वैजन्ती वनमाला
११.	श्रीमुनिवाहन	रोहिणी	कार्त्तिक	निचुलापुरी (तिरुच्चि जिला)	श्रीवत्स
१२.	श्रीपरकाल	कृत्तिका	कार्त्तिक	परिरम्भपुरी के पास अन्यून नगरी (नागपुर जिला)	शार्ङ्गधनुष

●

आचार्य का अनुभव

दो श्रीवैष्णव महात्माओं में राग-द्वेष के कारण परस्पर अन-बन रहा करती थी। एक महात्मा ने श्रीकृष्ण स्वामी से प्रार्थना की कि इन दोनों में मेल करा दीजिए। श्रीस्वामी जी ने उत्तर दिया कि क्या जगत् में दो ईश्वर हैं? महात्मा ने कहा कि तो भी मेल तो करा देना होगा। स्वामीजी ने कहा कि जब मैं अपने ही शरीर को वश में नहीं रख सकता हूँ तो दूसरे के शरीर को स्वाधीन करने का प्रयत्न कैसे करूँगा? महात्मा ने पूछा कि क्या ऐसा कहना ठीक है? स्वामीजी ने कहा कि हम भगवान् से डरकर मन को वश में नहीं रख सकते और मनुष्यों से डर कर मुँह बन्द नहीं रख सकते हैं, तो फिर हम इनका मेल कैसे करा सकते हैं? यह सुनकर दोनों महात्मा डर गये और मित्रता से रहने लगे।

महात्मा के पहले उत्तर का अभिप्राय है कि समस्त जगत् का कार्य ईश्वरेच्छा से हो रहा है, फिर मैं इसमें हस्तक्षेप किस प्रकार कर सकता हूँ? दूसरे उत्तर का अभिप्राय है कि जो अपने ही शरीर और इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकते हैं वे दूसरों के शरीरों का नियमन किस प्रकार कर सकेंगे? तीसरे उत्तर का अभिप्राय है कि मन के द्वारा किसी के विषय में बुरा चिन्तन करने से अन्तर्यामी भगवान् देखते हैं, दुर्वचन कहने से जगत् के मनुष्यों से झगड़ा होता है। ●